॥ ओ३म् ब्रह्मणेनमः ॥

कर्म्मव्यवस्था।

भूमिका।

मनुष्य का प्रत्येक संकल्प उदय होने पर आभ्यन्तरिक लोक में चला जाता है और अपने भावानुसार रूप-देवता (Elementals) नामक विश्व की मन्द मति शक्तियों में से किसी एक के साथ सम्बद्ध अथवा तन्मय होकर, उत्साही प्राणी के समान कार्य्य करने लगता है। यह संकल्प मन से उत्पन्न होने के अनन्तर एक उद्योगी चैतन्य भूत के सदृश रहता है, इसकी न्यूनाधिक आयु उस मस्तिष्क क्रिया के वेगानुसार होती है जिससे यह उत्पन्न होता है। इस प्रकार शुद्ध संकल्प तो उद्योगी और उपकारी प्राणी बनजाते हैं, और अशुद्ध संकल्प ठीक इस से विपरीत अपकारी दुष्ट जीव बनजाते हैं। इस प्रकार मनुष्य अपने आकाशिक तेज के प्रभाव में निरन्तर अपनी एक सृष्टि रचता है। यह सृष्टि उसके विकल्प, वासना तृष्णा, और कामकी तरङ्गोंसे उत्पन्न हुए २ प्राणियों से परिपूरित रहती है। इस सृष्टि का प्रवाह जिस कंप शील अथवा मृदु प्रकृत्ति (nervous (and sensitive) वाले देह धारी से स्पर्श करता है, उसी पर अपने वेग की तीव्रता के अनुसार भाव डालता है। बौद्ध शास्त्रों में इस प्रवाह को स्कन्ध कहते हैं और आर्ष ग्रन्थोंमें कर्म्म नामसे पुकारते हैं, योगीजन इस मानसिक सृष्टि के रूपों को ज्ञानशक्ति द्वारा से

अपनी इच्छा अनुसार जिस प्रकार चाहें उत्पन्न करते हैं, पर सर्व साधारण मनुष्य तो इसे अज्ञानता से उत्पन्न करते रहते हैं। उपरोक्त कथन महात्मा 'क, ह० ऋषि' के एक पत्रमें से लिया गया है जोकि उन्होंने तत्वज्ञान सभा (Theosophical Society)के स्थापित होनेके कुछ काल अन्तर एक शिष्यके पास भेजा था। कर्म्म व्यवस्था के सार का इससे अधिक स्पष्ट वर्णन और कहीं नहीं मिलता। यदि इस कथनको सर्व सम्बन्ध सहित समझ लिया जावे,तो इस विषय की कठिनता बहुत कुछ निवृत्त हो जावेगी और कर्म्म व्यवस्थाके मुख्य सिद्धांत का गौरव अंतष्करणमें उतर आवेगा। इस लिये गूढ विषय के वर्णन में हम उक्त कथन को आधार बनायेंगे। इस विषय के यथार्थ बोध के लिये, कर्म्म रीति का अपरिवर्त्तन,मनुष्य की क्रिया शक्ति और विश्वके मण्डलोंका स्पष्ट ज्ञान होना आवश्यक है, इस वास्ते आरम्भ में इन का वर्णन किया जता है ॥

कर्म्म रीति का अपरिवर्तन।

प्रसिद्ध है कि हम एक ऐसे लोकमें निवास करते हैं जहां की प्रत्येक कार्य्यवाही ऐसे २ नियमोंके अनुसार होती है जिन को उलंघन करना हमारी सामर्थ्य से बाहर है। यदि इस बात का पूर्ण अनुभव हो जावे और इसकी सत्ता मानसिक सृष्टिमें वैसेही प्रत्यक्ष होजावे जैसेकि स्थूल सृष्टिमें होती है, तो प्रायः एक प्रकारकी परतन्त्रता हमारे ऊपर छा जाती है और ऐसा प्रतीत होने लगता है कि हम किसी ऐसी प्रबल शक्ति के आधीन हैं, जो हमें अपनी इच्छानुसार जिधर चाहे कठपुतली के समान नचा रही है। परन्तु वास्तवमें यह बात इससे उलटी है। क्योंकि जब इस प्रबल शक्ति का यथार्थ ज्ञान हो जावे तो यही शक्ति हमारी आज्ञाकारी सेवक के समान हो कर जिस ओर हम चाहें हमें ले जाती है। विश्व की समस्त शक्तियों का जितना अधिक बोध हमें हो, उतना ही हम उन से अपनी इच्छा अनुसार काम लेसक्ते हैं। प्रकृति के नियमों का पालन करनेसे हम प्रकृति को जीत सक्ते हैं॥

ज्ञान प्राप्ति से प्रकृति का दुर्निवार प्रवाह हमारे वश में आ जाता है (जैसा कि पतञ्जलि मुनि भी योग सूत्र के १म, अध्याय में लिखते हैं। "परमाणु परम महत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः" ॥ ३९॥ परमाणु से लेकर महत् पर्य्यन्त सब पदार्थ योगीके वशमें होजातेहैं) ज्ञानी जन प्रकृति की शक्तियोंके अमित भण्डारमें से जिस मात्रा और बल वाली शक्ति की आवश्यकता हो उस को अपने अर्थ के लिये कार्य्य में ला सक्ते हैं और इन शक्तियोंके वर्त्तने से अर्थ सिद्धि भी अवश्य होती है क्योंकि प्रकृति के नियम नित्य सम रहते हैं॥

सायँस के प्रयोगों (Experiments) की सत्ता, फल प्राप्ति के निमित्त यत्नों का प्रबंध करना, और भविष्यत के वृतान्तको पहिले ही से कथन कर देना, नियमों की नित्यता पर ही निर्भर है। इसी के आश्रय रसायनियों (Chemists) को निश्चय होता है, कि एक प्रकार की सामग्री के साथ एक ही प्रकार का अनुष्टान करने से सदैव समान फल होता है; यदि कभी फल विपरीत भी हो जावे तो समझा जाता है कि अनुष्टान में कहीं कुछ न्यूनता होगई होगी, यह कभी अनुमान नहीं किया जाता, कि प्रकृति के नियमों का परिवर्त्तन हो गया है। मनुष्यों के कर्मोंके नियमों की भी ऐसी ही रीति वर्त्तती है। जितने ज्ञानके साथ कोई कर्म्म हम करते हैं, उतना ही ठीक २ उसके भविष्यत में होने वाले फल को बतला सक्ते हैं। प्रायः हम अपनी अज्ञानता से कह दिया करते हैं, कि अमुक कार्य तो दैवयोग से होगया है, वास्तव में ऐसा नहीं होता। प्रत्येक कार्य्य नियमानुसार होता है। इन निममों से अनभिज्ञ रहना अथवा उन पर ध्यान न देने के कारण ही हमारे मुख से दैवयोग, अकस्मात् आदि शब्द निकला करते हैं। जैसाकि स्थूल लोकमें होता है वैसाही मानसिक लोक में भी किसी क्रियाके फल को पहिलेसे जान सक्ते हैं, उसकी प्राप्तिका यत्न करके उसकी सिद्धि पर निश्चय कर सक्ते हैं। प्रकृति अपनी नियम रीतिमें हमें कभी धोखा नहीं देती किन्तु अपनी अज्ञानता के कारण हम आप ही धोखेमें पड़जाते हैं। प्रत्येक लोकमें ज्ञान वृद्धिके साथ ही बल वृद्धि भी होती है, मानो सर्वज्ञता और सर्व शक्तिमानता एक ही अर्थके बोधक होते हैं॥

प्रकृति के नियमों की क्रिया मानसिक सृष्टिमें स्थूल सृष्टि के समान नित्य एकसी क्यों न रहे, क्योंकि सर्व विश्व की उत्पत्ति

एक तत्व से हुई है और जिसको हम नियम कहते हैं,वह केवल उसी तत्व के स्वभाव का सूचक है। जिस प्रकार सर्ब विश्व की उत्पत्ति एक तत्व से हुई है, उसी प्रकार उस की स्थिति भी एक नियमके आश्रय होती है। सकल ब्रह्मांड का आधार केवल नियमोंके नित्य स्वभाव पर ही निर्भर है॥

विश्व के मण्डल।

कर्म्म की अवस्था समझने के लिये, विश्व के नीचे लिखे हुवे ३ मंडलों और उन के संबन्धी मनुष्य के तत्वों का स्पष्ट ज्ञान होना आवश्यक है। निम्न लिखित चित्रमें विश्वके मण्डलों, उनके संबन्धी तत्वों और उन उपाधियोंके नाम लिखेगये हैं, कि जिनके द्वारा जीव उन मण्डलों में भ्रमण करसक्ता है। तत्वों के नामों से उन में वर्त्तमान चेतना की अवस्था प्रतीत होती है॥

आत्मा।

सुषुप्ति मंडल	बुद्धि	महा कारण देह (Spiritual body)
स्वर्ग मण्डल Devachanic	मनस्	१ कारण देह (Causal body) २ मानसिक देह वा मायावी रूप (Mind body)
गगन मण्डल Psychic or astral	१ काममनस् २ काम	सूक्ष्म देह (Subtle body)
स्थूल मण्डल	१ लिङ्गशरीर २ स्थूलशरीर	स्थूल देह Physical body

जब योग के साधनों से जिज्ञासु इन मण्डलों में भ्रमण करना सीखता है, तब शब्द-ज्ञान का निर्णय करके अपने तजरबों द्वारा अनुभव ज्ञान अर्थात् विज्ञान को प्राप्त करलेता है। विश्व के स्थूल मण्डल अर्थात् इस जगत में कार्य्य करनेके वास्ते जीवन को स्थूल देह की सहायता लेनी पड़तीहै इसी लिये जीवकी चेतना का प्रकाश मस्तिष्क की शक्तियों से सीमावद्ध (Limited) है।

गगन मंडल की प्रकृति कई दरजे की सूक्ष्मता वाली होती है, इसी लिये इस मंडलमें कार्य्य करने के वास्ते जीव कई प्रकार की सूक्ष्म उपाधियों से काम लेता है। इन सब उपाधियों को सूक्ष्म शरीर के नाम से पुकारते हैं स्वर्ग अर्थात् देवचान मंडल दो भवनों में विभक्त है, जिन में से एक को रूप-भवन और दूसरे को अरूप-भवन कहते हैं। रूप-भवन में जीव मायावी रूप के आश्रय काम करता है,मायावी रूप को मानसिकप्रकृति से बनने के कारण मानसिक देह भी कहा करते हैं। अरूप-भवनमें कारण शरीर काम देता है। चतुर्थ मंडल का अभी समझना अतीव कठिन है इस लिये उस का वर्णन करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता॥

स्मरण रहे कि इन मण्डलों की प्रकृति एक प्रकार की नहीं होती, प्रत्येक मण्डल की प्रकृति ऊपर के मण्डल की प्रकृति से अतिघन और स्थूल होती है। सृष्टि क्रममें भी इसी प्रकार प्रकृति सूक्ष्म से स्थूल और अघन से घन होती है। इस के अतिरिक्त इन मण्डलों में देवों (Elementals) के बहुत से गण (Heirarchies) बसते हैं, देवगणों की बहुत सी श्रेणियें हाती हैं। सब से उच्च श्रेणी के महामति वाले देवगण सुषुप्ति मण्डल में रहते हैं, और नीच श्रेणी के मन्दमति वाले देवगण स्थूल मण्डलमें निवास करते हैं। प्रत्येक

मण्डल में कोई भी ऐसा अणु नहीं है, जिसमें पुरुष और प्रकृति का संयोग न हो। प्रकृति अणुका शरीर होती है और पुरुष उसका प्राण होता है। कणों (ज़र्रों) के पृथक् २ संघात (Independent aggregtions of particles) अनेक प्रकार के रूप रूपांतर और मूर्त्तियों कोधारणकर अपनी२ जाति के देवगणों से प्रविष्ट वा संयुक्त होते हैं। कोई भी रूप ऐसा नहीं, कि जिसका संबन्ध किसी देवतासे न हो, यह विदित रहे, कि एक प्रकार के रूप से एक ही जाति के देवता सम्बन्धित होते हैं, अन्य जातिके देवता उस एक ही रूपमें प्रविष्ट नहीं हो सक्ते। जिस २ दरजे की उन्नति वाला रूप होता है, उस ही दरजे की उन्नति वाला देवता उस में प्रवेश करता है॥

अब पहिले गगनमंडल के देवगणों का कुछ वर्णन संक्षेप से किया जाता है, क्योंकि इन्हीं के द्वारा मनुष्य को काम रूप अर्थात् वासनाओं से निर्मित शरीर मिलता है। यही देवगण मनुष्य का सूक्ष्म शरीर निर्माण करते हैं, और उस की सूक्ष्म इन्द्रियों को सचेत करते हैं, जिन के द्वारा मनुष्य इन्द्रिय ज्ञान प्राप्त करता है। गगन मंडल के देवताओं का मुख्य स्वभाव इन्द्रिय ज्ञानका उत्पन्न करना है। जहां कहीं थरथराहट (vibration) अथवा स्पर्श होता है, वहीं कोई न कोई देवता अपने आप को उस से सम्बन्धित कर लेता है। और न केवल यही वरञ्च इस थरथराहट वा स्पर्श के सुख दुःख और प्रिय अप्रिय का वोध उत्पन्न कर देता है। ऐसे स्पर्श ज्ञान (Sensation) को करने वाले और विविध चेतना वाले देवताओं से गगनमण्डल परिपूरित है। जिस प्राणी का देह इन देवताओं से निम्मीण किया हुआ होता है उसमें स्पर्श ज्ञान की सामर्थ्य होती है, और मनुष्य ऐसी ही निर्मित देहके कारण विषयों के सुख दुःख

प्रिय अप्रियों को भान करता है। मनुष्य को अपने शरीर के रन्ध्रों अर्थात् शैल (cells) की चेतना का बोध नहीं होता । रन्ध्रों में अपनी चेतना अलग होतीहै और वह मनुष्योंकी चेतनासे भिन्न होती है। इसी चेतना के अनुसार रन्ध्र मनुष्य के जीवन के अर्थ अनेक क्रिया करते हैं, अर्थात् मनुष्य के शरीर में जिस वस्तु की न्यूनता होती है, उसे बाहर से लेजाकर पूर्ण करते हैं और जिस पदार्थ की अधिकता होती है, उसे बाहर निकालते हैं। मनुष्य अपनी चेतना द्वारा रन्ध्रों की इस क्रिया को न तो घटा सकता है, और न बढ़ा सकता है। मनुष्य अपनी चेतनाको हृदयके किसी रन्ध्र की चेतना में कभी ऐसा लीन नहीं कर सकता, कि जिस से उस को रन्ध्रकी क्रिया का यथार्थ ज्ञान हो। मनुष्यों की चेतना सामान्य रीतिसे गगनमंडल में कार्य्य करती है, और यह कार्य्यवाही इस मंडल के उच्च भवनों में भी काम-युक्त मनस् द्वारा हुआ करती है। शुद्ध मनस् कभी इस मंडल में कार्य्य नहीं करता ॥

गगन मंडल उसी प्रकार के देवताओं से पूरित है जिन से मनुष्यका सूक्ष्म देह बना हुआ होता है। इन्हीं से पशुओं का नाम देह भी बनता है, सूक्ष्म देह ही के कारण मनुष्य का सम्बन्ध इन देवताओं से होता है, और उन देवताओं की सहायता से अपने आस पास के पदार्थों के साथ सम्बन्धित होता है, और उन के प्रिय वा अप्रिय होनेका भान करता है। मनुष्य अपनी इच्छा, मानसिक तरङ्गों और वासनाओं के द्वारा गगन मण्डल के असंख्य प्राणियों पर अपना भाव डाल कर उन को चारों ओर से आकर्षण करता है। इस लेखसे यह सिद्ध होता है कि सूक्ष्म शरीर एक कला के समान है, जिस रीति से यह कला बाहरसे आये हुए स्पर्शों को

ज्ञान में बदलती है ठीक उसी प्रकार आभ्यन्तरिक इन्द्रियां ज्ञान को थरथराहट में बदलती हैं ॥

संकल्प रूपों की उत्पत्ति ।

उक्त व्याख्या की सहायतासे अब हम महात्माके अमृत रूपी वचनों को भली प्रकार से समझ सकेंगे। मन अपने भवन अर्थात् गगन मण्डल की सूक्ष्मतर प्रकृति में कार्य्य कर २ नाना प्रकार के आकार उत्पन्न करता है; इन आकारों को संकल्प रूप (Thought forms) कहते हैं। मन की जिस शक्ति से यह रूप उत्पन्न होते हैं उसे चित्वन शक्ति (Imagination) कहते हैं। यदि इसको मनस् की जननी शक्ति भी कहा जावे, तो बहुत ठीक है। सम्भाषण के समय संकल्प रूपों को दूसरों के समक्ष प्रकट करने के अर्थ शब्द तो एक तुच्छ और अधूरासा साधन है। शब्दों में इतनी सामर्थ्य नहीं होती है कि वह एक मनुष्य के मन के आशय को दूसरे के मन में यथार्थ रूप से पहुंचा देवें, क्योंकि प्रत्यय अथवा संकल्प-रूप एक बड़ी संकीर्ण (complicated) सी वस्तु है, उसके यथार्थ रूप के वर्णन के अर्थ कई २ वाक्य कहने पड़ते हैं। वार्त्तालाप में एक आशय के प्रगट करने के लिये बार बार लंबे २ वाक्य कहने पड़ते हैं, जिनसे एक तो समय व्यर्थ व्यतीत होता है और दूसरे बात का आनन्द जाता रहता है; इसलिये वार्त्तालाप की सुगमता के वास्ते संकेत नियत किये जाते हैं। इन संकेतों के नियत करने की रीति यह है, कि किसी प्रसङ्ग के मानसिक रूप के प्रधान चिन्ह को लेकर, उस चिन्ह के सूचक शब्द से सकल प्रसङ्ग को सूचित करते हैं; प्रधान चिन्ह के नाम और प्रसङ्ग में यह सम्बन्ध संकेत मात्र होता है, जैसे त्रिकोण शब्द का श्रवण

श्रोता के चित्त में एक ऐसा आकार उत्पन्न करता है कि जिसको पूरा २ शब्दों द्वारा वर्णन करना, बिना कई वाक्यों के, असम्भव है। यहां केवल आकार के प्रधान चिन्ह अर्थात् तीन कोनों को देख कर आकार का नाम त्रिकोण रक्खा गया है। गूढ़ चिन्तन प्रायः चिन्हों द्वारा ही हुआ करता है, और इस चिन्तनका तात्पर्य्य फिर यत्न के साथ संकेतित शब्दों के द्वारा प्रगट करते हैं॥

जिन भवनोंमें एक मनकेसाथ दूसरे मन का सम्भाषण होता है, वहांमन का आशय ऐसी पूर्ण रीतिसे जाना जाता है जो शब्दों द्वाराजानना कठिन है। संकल्प संप्रेषण(Thought transference)क्रिया में भी मनुष्य निज अभिप्राय को दूसरे के चित्त में पहुंचाने के लिये शब्दों का उच्चारण नहीं करते, किंतु केवल अपने संकल्प के प्रत्ययों द्वारा पहुंचा देते हैं। वक्ता अपनी सामर्थ्य के अनुसार निज मानसिक रूपों को शब्द द्वारा प्रकट करता है, और यह शब्द श्रोता के मन में वैसे ही रूप उत्पन्न करते हैं, जैसे वक्ता के चित्त में होते हैं मन का व्यवहार आकारों अर्थात् चित्रों से होता है, शब्दों से नहीं। शब्दों से तो केवल श्रोत्रेन्द्रियों का व्यवहार होता है, बहुत से झगड़े और विवाद जो नित्य देखनेमें आते हैं उनका मूल कारण यह है, कि वक्ता अपने अभिप्राय के प्रगट करने के लिये जो शब्द बोलता है श्रोता उस शब्द से अन्य आकार अपने चित्त में धारण करता है॥

मानसिक-रूप दिव्य प्रकृति से बनते हैं। यह रूप दिव्य प्रकृति की तीव्रता से थरथराने वाले परमाणुओं से बने हुए होते हैं। यह थरथराहट किसी योग्य प्राणी में शब्द और प्रकाश का ज्ञान उत्पन्न करती है। संकल्प-रूप के परमाणुओं की थरथराहट

ज्यों २ गगन मण्डल के निचले भवनों की अधम प्रकृति में उतरती आती है, उतनी ही यह चारों ओर प्रकाश युक्त ध्वनि उत्पन्न करती है, और अपने प्रकाश के रङ्ग से सम्बन्धित देवताओं को आवाहन कर अपने स्रोतस् (संकल्प रूप) की ओर लेजाती है ॥

विश्व की अन्य सकल वस्तुओं के समान देवगण भी सप्त प्रजापतियों में से किसी न किसी के साथ अवश्य सम्बन्ध रखते हैं। शब्द ब्रह्म की तृतीय अवस्था के शुद्ध निरञ्जन प्रकाश में से सप्त रङ्ग की किरणें निकलती हैं । प्रत्येक किरण मेंसे फिर सप्त-रश्मि निकलती हैं। इसी प्रकार हर एक रश्मिसप्त उपरश्मियों में विभक्त है। इस प्रकार शब्द ब्रह्म की अनेक रश्मियों से यह सब संसार आच्छादित हुआ २ है। और यही सब उपनिषदों और वेदों का भी सिद्धान्त है। सृष्टि की अन्तर रचना इन्हीं रश्मियों के सम्बन्ध से होती है। इन रश्मियों को प्रकृति के निचले भवनों में देवता के नाम से पुकारते हैं। इन देवताओं के साथ मनुष्य संभाषण भी कर सक्ता है, परन्तु स्मरण रहे कि यह संभाषण लौकिक रीति से वाणि द्वारा नहीं होसक्ता; इनके साथ वार्त्तालाप ऐसी भाषा में होता है, जिसकी वर्णमाला अक्षरों की नहीं है, वरञ्च रङ्गों और रङ्गों के सूक्ष्म भेदों से निर्मित है। इन रङ्गों की भाषा का सविस्तर वर्णन मन्त्र शास्त्र में आता है। आज कल यह विद्या बहुत कुछ लुप्त होगई है, और जो कहीं कुछ थोड़ी बहुत है, वह भी लुप्त होती जाती है। यह विद्या परम्परासे गुप्त रक्खी जाती है, क्योंकि शब्द रङ्ग और अङ्कोंके यथार्थ बोध होजाने से मनुष्य अपनी इच्छा शक्ति के बल से इन देवताओं के साथ सम्भाषण कर सक्ता है, और उनको अपने वश करके जो चाहे वह काम भी लेसक्ता है।

इस रञ्ज भाषा के विषय में महात्मा "क० ह०" का यह कथन है, कि तुम अपना आशय विश्व की ऐसी मन्दमति शक्तियों को किस विध समझा सक्ते हो और वशीभूत क्योंकर करसक्ते हो, जब कि इनके साथ संभाषण का साधन लौकिक वाणि नहीं है, किंतु नाद (Sound) और रङ्ग (Colour) के परस्पर संबंधित थरथराहट से बनीहुई वाणि हैं इन शक्तियों की अनेक श्रेणियें नाद, प्रकाश और रङ्ग के ही भेद के कारण होती हैं। इनकी सत्यता का न तो तुम को कुछ पता है और न ही इसपर तुम्हारा विश्वास है। नास्तिक, ईसाई आदि अपनी २ तर्कों के अनुसार लोगों के विश्वास को दूर करते जाते हैं। साइन्स विद्या तो सबसे बढ़कर इसको मिथ्या धर्म्म समझ कर विश्वास हीन हुई २ है॥

देश देशान्तर के प्राचीन ग्रन्थों में इस रञ्ज भाषा के बहुत से उदाहरण मिलते हैं। मिस्रदेश में भी प्राचीन समय में अलौकिकधर्म्म पुस्तकें रङ्गों में ही लिखी जाती थीं। यदि कोई लेखक प्रति में किञ्चन्मात्र भी अशुद्धि करता, तो उस को मृत्युदण्ड दिया जाता था। इस प्रकार की आश्चर्य्यमय वार्त्ताओं का इस स्थान में सविस्तर लिखना आवश्यक नहीं, यहां हमारा प्रयोजन केवल इस बात के प्रकट करने का है, कि देवताओं (Elementals) के साथ संभाषण रङ्गों द्वारा किया जाता है। रङ्गों द्वारा उन को हमारा आशय ठीक वैसे ही प्रतीत हो जाता है जैसे हमको एक दूसरे के आशयलौकिक वाणि द्वारा विदित हो जाते हैं॥

संकल्प रूपों के सूक्ष्म भेद होते हैं। इन रूपों को उत्पन्न करने वाले मनुष्यों के मनमें जिस प्रकार का प्रेरिक हेतु होता है, उसी प्रकार का रङ्ग उस रूप के ध्वनि युक्त प्रकाश का भी होता

है। यदि प्रेरक हेतु शुद्ध, प्रेममय और परोपकार के निमित्त हों, तो उस का सम्बन्धित रङ्ग उस के संकल्प रूप की ओर ऐसा देवता आकर्षण करेगा जो शुभ, प्रेममय और उपकार युक्त कर्मों में उद्योगी हो। यह देवता उस को चेतन बनाता है, मानो यह देवता उस जड़ रूप का जीवात्मा है। इस प्रकार से गगन मण्डलमें परोकारी स्वतन्त्र प्राणी उत्पन्न होते हैं। इस के अतिरिक्त यदि प्रेरक हेतु अशुद्ध,अक्षमी और अपकारी हो, तो उस का सम्बन्धित रङ्ग ऐसे देवता को संकल्प रूपकी ओर आकर्षण करेगा, जो कि अशुभ निकृष्ट और अपकारी कर्मों में उद्योगी हो। पहिले के समान यह देवता भी संकल्प रूप में प्रविष्ट हो, उसे सचेत बनाता है। इसी रीति से गगन मण्डल में आसुरी स्वभाव वाले अपकारी प्राणी उत्पन्न होते हैं॥

क्रोध से उत्पन हुए २ संकल्पों की थरथराहटों का प्रकाश रक्त वर्ण वाला होता है। यह रक्त वर्ण अपनी श्रेणी के देवगणों को उस क्रोधी संकल्प रूप की ओर आकर्षण करता है। देवगणों में से एक उस रूप में घुस कर उस में घातक और विनाशक उद्योगता प्रकट करता है। साधारण मनुष्य इस प्रकार अपने भले बुरे भावानुसार अजानता से ही गगनमण्डल के प्राणियों से संभाषण करते हैं, और उन के समूहों के समूहों को अपने चारों ओर आकर्षण कर, उन्हें अपने संकल्प रूपों में निवासभूमि देते हैं। यही कारण है कि मनुष्य अपने अकाशिक तेज के प्रवाह में निरन्तर निज सृष्टि रचता है, जो उस के विकल्प वासना तृष्णा और काम की तरंगों से उत्पन्न हुए २ प्राणियों से परिपूरित रहती है। हमारे ही उत्पन्न किये किये हुए देव और दैत्य हमें चारों ओर से घेरे हुए

हैं। इन्हीं से हमें सुख दुःख प्राप्त होता है। अन्य मनुष्यों को भी इन के संसर्ग से सुख दुःख मिलता है निस्सन्देह इन्हीं को यमराज के दूत कहते हैं ॥

प्रत्येक मनुष्य का चारों ओर जो तेज होता है, उस के रंग प्रतिक्षण संकल्प और भावानुसार वदलते रहते हैं, और केवल उन मनुष्यों को दिखलाई देते हैं, जिनकी दिव्य दृष्टि खुली हुई होती है। जिन महापुरुषों की दिव्य दृष्टि विशेष रूप से खुल जाती है उन को संकल्पों के रूप और देवगणों की श्रेणियों पर रंगों के भाव भी प्रतीत होने लगते हैं ॥

संकल्प रूपों की उद्योगता

इन प्राण प्रतिष्टित संकल्प रूपों की आयु प्रथम तो उनके आदिवेग (Initial intensity) से निर्णय होती है, अर्थात् इन को उत्पन्न करने वाले मनुष्यों के संकल्प दृढ होने से, इनकी आयु दीर्घ और मध्यम होने से अल्प होती है। दूसरे, इन की आयु उस आहार पर निर्भर है, जो कि इनको उत्पत्ति के पश्चात् अपने उत्पत्ति कर्त्ता, अथवा अन्य मनुष्यों द्वारा उन्हीं संकल्पों पर बारम्बार चिन्तन करने से मिलता है। चिन्तन के पुनराभ्यास से उन की निरन्तर बृद्धि होती रहती है। जिस संकल्प को बारम्बार मगन हो कर ध्याया, और रटा जावे, वह गगनमण्डल में दृढ रूपसे स्थित हो जाता है। इसके अतिरिक्त सजातीय संकल्पों में परस्पर आकर्षण भी होती है, जिस से उन की परस्पर पुष्टि होती है; इस विध गगनमण्डल में महाबली, और उद्योगी रूप देवता विद्यमान होते हैं ॥

संकल्प रूपों और उनके उत्पत्ति कर्त्ताओं में एक अदृश्य गूढ सम्बन्ध भी होता है, जिस के कारण वह अपने २ उत्पत्ति कर्त्ताओं के चित्तमें भाव डाल कर, अपने पुनर्जन्म के संस्कार जागते हैं, अर्थात् उन के चित्तमें विद्यमान हो कर उन को अपने ही चिन्तन करने, और निज भावानुसार बर्त्ताव करने की प्रेरणा करते हैं। पुनराभ्यास से जब कोई संकल्प दृढ़ हो जाता है, तो चित्त में उसके चिन्तनका निश्चित भाव उत्पन्न हो जाता है, मानो एक ऐसी प्रणाली बनजाती है, कि जिस में चिन्तन शक्ति का प्रवाह बिना रोक निर्यत्न स्वतः सिद्ध बहिने लगता है. और इस से मानसिक उन्नति में सहायता मिलती है यदि भाव श्रेष्ट और अत्युत्तम हो; अन्यथा यह भाव निकृष्ट होने के कारण महा विघ्नकारी और दुःखदाई हुआ करता है॥

स्वभावों के बननेकी इस रीति पर कुछ थोड़ा सा विचार करना यहां पर उचित जान पड़ता है, क्योंकि इस से कर्मों की गहन गति सूक्ष्म परिमाण से भली भान्ति प्रकट होती है। उदाहरण की रीति से कल्पना करलो कि एक ऐसा सज्जी भूत चित्त है, कि जिस में भूत काल के कर्मों का कोई संस्कार नहीं है। ऐसे चित्त का मिलना यद्यपि असम्भव है, तथापि कल्पित उदाहरण से हमारा उद्देश्य भलीभांति सिद्ध होजावेगा। ऐसा चित्त माना जासक्ता है, जो कि संपूर्ण स्वतन्त्रता से निज इच्छानुसार चिंतन करके एक संकल्परूप उत्पन्न करता है। इसके अनन्तर उसी संकल्प को बारम्बार रटने से चिन्तन की एक निश्चित वृत्ति उत्पन्न हो जाती है। ऐसी वृत्ति के उत्पन्न होने पर फिर चित्त स्वयमेव अजानता से ही, उस संकल्प के चिन्तन में लग जाया

करेगा, मानो चिन्तन शक्ति का प्रवाह, इच्छा करने बिना ही उस संकल्प की ओर बहने लगेगा। अब मान लो कि चित्त इस वृत्ति को किसी कारण निन्दित समझने लगा है। और उसको अपनी उन्नति में हानि कर्त्ता जान कर उसका त्याग करना चाहता है। स्मरण रहे कि आदिमें यह वृत्ति चित्तकी निज स्वतंत्र कार्य्यवाही से उत्पन्न हुई थी, फिर उसकी शक्ति के प्रवाह के लिये सज्जी भूत (तय्यार) प्रणाली विधान करके उसके कार्य्यों में सहायकारी होगई है। यदि चित्त इस वृत्ति से रहित होना चाहे; तो होसक्ता है। जिस प्रकार निज पुरुषार्थ से इसे उत्पन्न किया था, उसी प्रकार निज आन्तरीय पुरुषार्थ से इस विघ्न रूपी सचेतन बेड़ी को (Living fetters) छिन्न भिन्न वरञ्च नष्टभी करसक्ता है। इस उदाहरण में हमने मानसिक कर्म्मके एक छोटेसे युगकी गति को शीघ्र व्यतीत होते देख लिया है। स्वतंत्र चित्त पहिले तो एक बन्धरूपी स्वभाव बनाता है, और फिर उसे अपनेही बनाये हुए बन्धनोंमें कार्य्य करना पड़ता है, तथापि बन्धनोंके घेरे के भीतर उसे कार्य्य करनेमें पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। यदि चाहे तो आन्तरीय परिश्रमसे उसके प्रतिकूल कार्य्यकरकेउसका विनाश कर दे। इसमें किञ्चित् सन्देह नहीं है, कि हम अपने आप को कभी किसी कार्य्य के आरम्भ में पूरा २ स्वतन्त्र नहीं पाते, क्योंकि पूर्वजन्म कृत कर्मों के अनुसार अपनी ही बनाई हुई बेड़ियों से बंधे हुए जन्म लेकर संसार में आते हैं। परन्तु हर एक बेड़ी की गति उक्त रीति से होती है। मन ही इसे निर्माण करता है, वही इसे पोषण करता है, और पोषण करते समय यदि चाहे तो घिस२ कर उसे चूर्ण अथवा क्षय भी करसक्ता है।

संकल्प-रूप अपने उत्पत्ति कर्त्ताओंद्वारा किसी निश्चित मनुष्य की ओर उद्दिष्ट भी होसक्ते हैं, अर्थात् भेजे जा सक्ते हैं। यह संकल्परूप अपने प्राण प्रतिष्ठित देवताओं की प्रकृति के अनुसार निश्चिय करके मनुष्यों को हानि वा लाभ पहुंचाते हैं। यह कोईमन घड़ित बात नहीं है, कि आशीर्वाद, प्रार्थना, और प्रेममय वचनों से मनुष्यों को अवश्य लाभ होता है, इन आशीर्वाद आदि से प्रेरणा किये हुए रक्षक देवताओं के समूह के समूह आशीरप्रद (यजमान) मनुष्य के चारों ओर आच्छादित होजाते हैं और उन को अनेक बलाओं से और निकृष्ट भावी से बचाते हैं॥

मनुष्य अपने संकल्प-रूपों को उत्पन्न कर, उन्हें केवल अन्य मनुष्यों की ओर ही उद्दिष्ट नहीं करता है, वरंच अपने संकल्प-रूपों के सजातीय रूपोंको,(जो अन्यमनुष्यों द्वारा उत्पन्न किये हुए होते हैं) गगनमण्डल में से चंबुकवत् आकर्षण भी करता है। इस त्रिध वाहर से आकर्षण कर अपनी शक्ति को बढ़ा सक्ता है; परंतु यदि उंसके संकल्प शुद्ध और उत्तम हों, तो वह अपनी ओर कल्याण-कारी शक्तियों को निर्यत्न ही आकर्षण कर, अपनी सामर्थ्य को बढ़ा,ऐसे ऐसे महान्कार्य्य वह कर डालेगा जोकि उसकी सामर्थ्य से वाहर हैं; और पीछेसे उसे प्रायः यही आश्चर्य रहेगा,कि वित्त से बढ़कर ऐसे महान् कार्य्य करने कीसामर्थ्य मुझ में कहां से आगई थी। इसी भांति यदि मनुष्य के संकल्प निकृष्ट और अशुद्ध हैं,तो वह अपकारी शक्तियों के समूह को आकर्षण कर इनके बल द्वारा अपने वित्त से बढ़ ऐसे २ अपराध कर डालेगा कि जिनका उसे पीछे महा पश्चाताप होगा और कहेगा "कि आश्चर्य की बात है, कि ऐसे बड़े उग्र पाप के करनेका साहस मुझ में कहां से

आगया। हो न हो, उस समय अवश्य मेरे सिर कोई भूत चढ़गया होगा जिसने यह करतूत मुझसे कराया"। निस्सन्देह गगनमण्डल की अपकारी शक्तियों ने उसके म्लेछ भाव होने के कारण उसकी ओर खिंचकर यह महान् शक्ति प्रदान की थी। संकल्प-रूप देवता चाहे भले हों वा बुरे मनुष्य की वासना-युक्त सूक्ष्म देह के देवताओं और उसके निज संकल्पों के साथ संबन्ध उत्पन्न कर लेते हैं, और बाहर से उसमें प्रेरणा करके उस से बड़े २ कार्य्य करवा डालते हैं। उक्त संबन्ध सजातीय देवताओं पर होता है। विजातियों पर उनका कुछ वश नहीं चलता, क्योंकि विजातीय संकल्प रूपों के देवता परस्पर प्रति-घातक (repellent) होते हैं। इसी लिये सत्पुरुष केवल अपने तेज (aura) बल से ही मलीन और अधम यौनी के देवताओं अथवा भूत प्रेतों को परे भगा देते हैं। सत्पुरुषों के गिर्द यह तेज चार-दीवारीके समान रक्षक होता है, और किसी बला को उनके निकट नहीं आने देता॥

गगनमण्डल के देवताओं में एक और प्रकार की उद्योगिता होती है, जिसके कारण बड़े २ फल देखने में आते हैं। इस लिये कर्म्म जाल को निर्म्माण करने वाली शक्तियों के संक्षिप्त वर्णन में से उस उद्योगिता के वर्णन का त्याग करना योग्य नहीं है। यह उद्योगिता पूर्व लिखित महात्माकेवाक्य के अन्तर्गत है। संकल्प रूप आकाशिक तेज के प्रवाह में रहिते हैं, और यह प्रवाह जिस कोमल प्रकृति वाले मनुष्य के साथ स्पर्श करते हैं, उसी पर अपने वेग की तीव्रता के अनुसार प्रतिभाव डालते हैं। किसी अवधि तक तो इस प्रवाह का भाव सब पर पड़ता है, परन्तु जितनी कोमल प्रकृति होती है, उतनाही उसपर अधिक असर होता है। सजातीय

देव परस्पर आकर्षण शक्ति द्वारा एकत्र हो, सहचारी पुञ्ज बन जाते हैं, और अपनी प्रकृति के अनुसार कल्याण वा अकल्याण कारी होते हैं। सजातीय संकल्प रूपों के संग्रह होजाने के कारण विदेशीय, और विजातीय पुरुषों अथवा अन्यान्य कुटम्बों में मति-भेद होता है, इसी लिये एक कुटम्बके पुरुषोंकी मति २य, कुटम्ब के पुरुषों से नहीं मिलती। एक देश अथवा एक संप्रदाय के सभ्यों में जो मति किसी विषय में होती है, वह अन्य देश और अन्य संप्रदाय के लोगों में नहीं होती। मनुष्यों के चारों ओर इन संकल्प रूपों से मानो बादल सा छा जाता है, जिसमें से प्रत्येक पदार्थ दृष्टि गोचर होता है। जैसे स्फटिकमणि समीपवर्ती पुष्पके रंग से युक्त भासती है, वैसे ही दृष्य पदार्थ इस मेघ से रञ्जित होकर, मनुष्यकी बुद्धि में भासता है। ये मेघ मनुष्यके कामनायुक्त मनस् में अपनी प्रति क्रियासे स्पन्द अथवा थरथराहट को उठाकर, उन के हृदय में अपने जैसी भावना की प्रेरणा करता है। ऐसे २ कुटम्ब, स्थान और जाति के संग्रहीत कर्मों के कारण, मनुष्य की उद्योगिता बहुत कुछ बदल जाती है, और निज योग्यता के प्रकट करने की शक्ति भी बहुत कुछ सीमाबद्ध होजाती है। यदि किसी ऐसे मनुष्य से कोई ज्ञान की वार्त्ता कहीजावे, तो उसे प्रायः उसका बोध यथायोग्य न होगा, क्योंकि उसके इर्द गिर्दके आच्छादित मेघमेंसे होकर जिस प्रकारका आभास उसकी बुद्धि में पड़ेगा, वैसाही ज्ञान उसमें फुरेगा। यह आभास मेघ के गुणों से रञ्जित होजाता है, और प्रायः तो ऐसा बदल जाता है, कि उसका वास्तविक गुण छिप जाता है, और कुछ का कुछ दृष्टि-गोचर होता है। कर्मों की यह गति अतीव गूढ़ है, इसका सविस्तर

वर्णन आगे किया जावेगा। उक्त एकसां चित्तवाले देवगणों का भाव मनुष्यों पर ही नहीं होता किंतु जब यह पुञ्ज घातक और विनाशक संकल्पों से बना हुआ होता है, तो उसका प्रकाश स्थूल लोक के मण्डल में महा भयंकर और संहार रूप होता है, मानो यह पुञ्ज विनाशकारी शक्तियोंका एकस्रोतस् है, जिसमें से बड़ी २ आपदाओं और क्लेशों की उत्पत्ति होती है, इन्हीं से बड़े २ चण्डवात (storms) आंधी, चक्रवात, (Hurricanes) भूकंप, जल-प्रलय (Floods) प्रभृति संसार में विद्यामान होते हैं। कर्मों के इन फलों का सविस्तर वर्णन भी आगे ही किया जावेगा ॥

प्रत्येक कोष के कर्म्मों की रचना।

मनुष्य और देवगणों के परस्पर सम्बन्ध, और चित्त की जननीय शक्ति के अनुभव करने के अनन्तर, एक जीवनके कर्म्मों की उत्पत्ति और उनकी गति कुछ २ समझ में आने लगती है। इस स्थानमें जीवन शब्द एक ऐसे छोटे से काल-चक्र का सूचक है, कि जिसके अन्तर्गत निम्न लिखित चार अवस्थायें मनुष्य के जीवन की हैं ॥

१म, स्थूल मण्डल अर्थात् दृष्य जगत् का जीवन, जो कि स्थूल देह द्वारा होता है। २य, गगनमण्डल अर्थात् सूक्ष्म जगत् का जीवन, जो कि मनुष्यको स्थूल देहके त्यागनेके पश्चात् सूक्ष्म शरीरमें प्रवेश होने पर प्राप्त होता है। ३ य, स्वर्गलोक का जीवन, जोकि मनुष्य को स्थूल देह के समान सूक्ष्म शरीर के त्यागने के पश्चात् कारणशरीर को धारण करने पर प्राप्त होता है। ४र्थ,

जीवन की वह अवस्था है, जो कि जीव को स्वर्ग से निकलने के पीछे भूमण्डल में पुनर्जन्म लेने के पहिले भोगनी पड़ती है॥

प्रत्येक मनुष्य को अपना काल-चक्र पूर्ण करने के अर्थ इन चारों अवस्थाओं में अवश्य गमन करना पड़ता है। इस युग में मनुष्य जातिकी वर्त्तमान दशा में सामान्य मनुष्य चाहे कितनाही अधिक और उच्चज्ञान प्राप्त क्यों न करले, उसे इस कालचक्र की चारों अवस्थाओं में तब तक अवश्य गमन करना पड़ता है, जब तक उसकी अध्यात्मिक उन्नति एक विशेष पद तक पहुंच कर आत्मज्ञानदायक न होली हो। इस बात को भली भान्ति जानलेना परम आवश्यक है, कि स्थूल देह के वियोग के अनन्तर शेष तीन अवस्थाओंमें निवास का समय, स्थूल देहके जीवन कालकी अपेक्षा बहुत ही अधिक होता है। इसी लिये मृत्युके अनन्तर की अवस्थाओं में यदि जीव की गति और उसकी क्रिया को न विचारें तो कर्म्मों की गहन गति का ज्ञान बहुत ही अधूरा रहेगा। अब हम एक महात्मा के कथन को साक्षी की रीति पर यहां लिखते हैं। जिस में यह वर्णन किया है कि मनुष्य का यथार्थ जीवन स्थूल देह केअनन्तर होता है॥

"वेदान्ती दो प्रकार का जीवन मानते हैं। एक लौकिक और २य, पारलौकिक। उनका यह भी कथन है, कि इसमें किंचित् भी संशय नहीं कि पारलौकिक जीवन ही सत्य है, क्योंकि लौकिक जीवन तो सदैव बदलता रहिता है, और उसकी आयु भी बहुत अल्प है, और यह केवल हमारी इन्द्रियों के बने हुए इन्द्रजाल के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। ऊर्द्ध लोकों का जीवन ही सत्य मानना चाहिये, क्योंकि इन्हीं लोकोंमें हमारा अवच्छिन्न निर्विकार और अमर सूत्रात्मा निवास करता है ····इसी वास्ते मृत्यु के पीछे

की अवस्था को सत्य और लौकिक जीवन और उसके अहंकार को असत्य माना जाता है" ॥

लौकिक जीवन में जीव की उद्योगिता का मुख्य प्रकाश संकल्प रूपों की उत्पत्ति में होता है, जिनका पहिले वर्णन हो चुका है। अब कर्म गतिको ठीक२ समझने के अर्थ सब से पहिले संकल्प रूपों के जानने की परम आवश्यक्ता है, कि वह क्या है। जीवात्मा चित्त रूप धार मानसिक चित्र उत्पन्न करता है, इस मानसिक चित्र को आदि चित्र कहते हैं। क्योंकि यह संकल्प की आदि अवस्था होती है। यह चित्र निज उत्पत्ति-कर्त्ता की सम्वित अर्थात् चेतना का अंश बन कर, उसका साथी बना रहता है, और इसी से सूक्ष्म प्रकृतिमें अथवा आकाश में स्पन्द-रूप सत्ता अर्थात् रूप-देवता बन जाते हैं। शब्द अथवा वाणी की यह वह अवस्था है, कि जो विचार में तो आ चुकी है, परन्तु मुख द्वारा उच्चारण में नहीं आई। जिज्ञासुओं को उचित है, कि संकल्परूप अन्यवृत्तियों से मन को रोक कर, एक ही संकल्परूपमें इस को बद्ध करें, और उसके फलों को त्याग उसके यथार्थ रूप को विचारें। यह चित्र अर्थात् संकल्प अपने उत्पत्ति कर्त्ता की चेतना का अंश हो, उसके स्वभाव का अवच्छेद्य भाग हो जाता है। वह उस से कभी भी भिन्न नहीं किया जा सक्ता, वरञ्च लौकिक जीवन में उसके सङ्ग रह कर, मृत्यु के अनन्तर अदृश्य लोकोंमें भी उसके साथ२ जाता है। जब इसका उत्पत्ति-कर्त्ता उर्द्ध लोकों में गमन करता हुआ ऐसे लोकों में प्राप्त होता है, कि जहां की प्रकृति अति सूक्ष्म और अघन होने के कारण अतीव तीव्र स्पन्दमय होती है, तो इस चित्र की घन और असूक्ष्म प्रकृति छिन्न भिन्न हो अधः लोक में विस्तृत

हो जाती है, और उस चित्र का संस्कार उत्पत्ति-कर्त्ता के संग रह जाता है। फिर जब जीवात्मा ऊर्ध्व लोक से लौटता है तो यही संस्कार जो कि सङ्कल्प का बीज रूप था फिर अपनी त्यागी हुई घन प्रकृतिको आकर्षण कर पूर्ववत ही अपना चित्र बना लेता है। जैसे कि वृक्ष के बीज भी पृथ्वी से यथोचित आहार ग्रहण कर अपना ही रूप फल, फूल और रस ग्रहणकरते हैं, अर्थात् गलगल एक विशेष रूप,और आमल रस को, और मिट्ठे नींबू निराले रूप और मधुर रसकों ही ग्रहण करते हैं ॥

यह मानसिक चित्र दीर्घ काल तक प्रसुप्त अवस्था में भी रहते हैं। और अपनी प्रबोधक सामग्री के प्राप्त होने पर जाग उठते हैं, और निज कार्य्य करनेलगते हैं। यह प्रबोधक सामग्रीतीन प्रकार से प्राप्त होती है,१ तो उत्पत्ति कर्त्ता केपुनरावेग, अर्थात् उस विषय को फिर तीव्रता से विचार करने से,२य,चित्त भूमिमें उसी सङ्कल्प से पैदा हुई २ अन्य वृत्तियों और उनके फल के पुनः प्रवेश से, और ३य,चित्त भूमि में अन्यान्य सजातीय संकल्प रूपों के भाव पड़ने से। प्रबोधक सामग्री से मानसिक चित्र की जीवन शक्ति बढ़ जाती है, और उसके रूप तथा आकार में भी परिणाम होजाता है ॥

मानसिक चित्रों का प्रादुर्भाव प्रकृति के नियमानुसार होता है, इन्हीं के संग्रह से मनुष्य का स्वभाव बनता है। जिस प्रकार छोटे २ रंध्र (cells) संग्रहीत होकर देह के रग पट्ठे बनाते हैं, और बनाते समय बहुत कुछ बदल जाते हैं,इसी प्रकार मानसिक चित्र भी एकत्र होकर मनुष्य के स्वभावोंको बनाते हैं, और प्रायः

इस क्रिया के समय यह भी परिणामित होजाते हैं। कर्म्मों की गति के बोध से इन परिणामों का बहुत कुछ भेद स्पष्ट होजावेगा॥

मनस् की क्रिया शक्ति अथवा जननीय शक्ति के कारण इन मानसिक चित्रों की बनावट में बहुत से द्रव्य काम में आते हैं, यदि मन काम से उद्योगित होकर कोई सङ्कल्प करता है, तो उस सङ्कल्प का चित्र कामिक गुणमय द्रव्यों से बनता है, और राजस् तथा तामस् स्वभाव को उत्पन्न करने वाला होता है। इस से विपरीत यदि मनस् किसी उत्तम उद्देश्य का विचार करे, तो उस विचार का चित्र सात्विक प्रकृति से बनता है और शान्ति शील होता है। जैसा २ संकल्प होगा वैसा २ ही उसका चित्र होगा। मानसिक चित्र शुद्ध वा अशुद्ध, विचारशील वा कामबद्ध, उपकारी वा अपकारी, और कैसा ही क्यों न हो, सब के सब मनुष्य की चित्त भूमि को सदैव निज आश्रय बना रखते हैं, इन्हीं के कारण पृथक् २ मनुष्यों के कर्म्म भिन्न २ बनते हैं। इन चित्रों के आश्रय बिना मनुष्य का एक जन्म २य, जन्म से कभी संबन्धित नहीं होसकता। कर्म्मों की नित्य सत्यता के वास्ते इनके साथ मनस् की शक्ति का संयोग होना आवश्यक है। जब तक कोई क्रिया मानसिक शक्ति से संपन्न न हो, तब तक वह नित्य और अपरच्छेद्य नहीं बन सकती। धातु (minerals), उद्भिद (vegetable) और पशु जातियों के पृथक् २ कर्म्म इसी वास्ते नहीं होते, कि उनकी क्रियाओं के सङ्ग मानसिक शक्ति का संयोग नहीं होता॥

अब इस बात पर विचार करना विधेय है, कि उक्त मानसिक चित्रों का संबन्ध उन उपचित्रों के साथ क्या है, जो कि गगन-मण्डल के देवगणों के साथ संयुक्त होकर उद्योगी संकल्परूप कहि-

लाते हैं। उपचित्र क्या होते हैं, और उनकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है, पहिले इस बात का वर्णन किया जाता है। यह उपचित्र शब्द की उस अवस्था में बनते हैं, जो वैखरी और मध्यमा वाक् के बीच में होती है, अर्थात् हृदय से शब्द के उठनेके अनन्तर और कण्ठ में आने से पूर्व की अवस्था में यह उपचित्र बनता है। जब कोई विचार चित्त भूमि से निकल गगनमण्डल में स्पन्दरूप होकर आता है, तो उस मण्डल की दिव्यप्रकृति के प्रमाणुओं को अपने स्पन्दके कारण एकत्रकर उपचित्र बनाता है। जिस प्रकार ब्रह्माजी मन के संकल्प उत्सृज होने पर दृश्यमान जगत् को रचते हैं, ठीक उसी प्रकार मनुष्य के मानसिक चित्र चित्त भूमि से बाहर निकल कर, उपचित्रों की मानसिक सृष्टि रचतेहैं। यह मानसिक सृष्टि प्रत्येक मनुष्य के आकाशिक तेज में विद्यमान रहती है। इन उप-चित्रों को दिव्य मानसिक चित्र (Astro-mental-image) कहिते हैं। यह चित्र गगनमण्डल के देवगणों की निवास-भूमि बनते हैं, और जब तक इन चित्रों का पूर्ण रीति से नाश नहीं होजाता, तब तक वे उन देवगणों को अपना भाव भी प्रदान करते हैं। इन चित्रोंका मानसिक अंशके साथ संयोग होनेके कारण गगनमण्डलके प्राणियों (देवगणों) में अहंकृति भाव भी उत्पन्न होता है। इन्हीं उद्योग वाली सत्ताओं को प्राणि कहते हैं, कि जिनकावर्णन इस पुस्तककी भूमिका में वर्णन हो चुका है। यह चित्र गगनमण्डल में भ्रमण करते रहते हैं। और अपने उत्पत्ति-कर्त्ता के साथ लोह-चुम्बुक-वत् सम्बन्ध रखते हैं। वह अपने जन्म के हेतु मानसिक चित्रों पर भी अपना भाव डालते हैं। वरं अन्यान्य चित्रों पर भी अपना प्रतिभाव डालकर उन्हें बदल देते हैं। प्रत्येक चित्र की उद्योगी अवस्था का

समय उसकी दशा के अनुकल दीर्घ अथवा अल्प होता है। इन उपचित्रों के प्रशान्त अथवा नष्ट-होजाने से मानसिक चित्रों की कुछ हानि नहीं होती, क्योंकि मानसिक चित्र योग्य सामग्री के प्राप्त होने पर प्रबोधक शक्तिके पुनरावेग से अपनी प्रतिमा गगन मण्डल में उत्पन्न कर लेते हैं ॥

मानसिक चित्रों का स्पन्द (कंप) केवल गगनमण्डल की अधः प्रकृति में ही गमन नहीं करता, वरञ्च इसका भाव ऊर्द्ध लोकों में भी पहुंचता है, और जिस प्रकार यह स्पन्द घन प्रकृति में एक स्थूलाकार उत्पन्न करता है, वैसे ही ऊर्द्ध लोकों में आकाश के अन्दर एक ऐसा अति सूक्ष्म रूप सृजता है, जोकि हमारे सूक्ष्म इन्द्रियों के गोचर नहीं होता। आकाश सब चित्रों का भण्डार है, मानो यह सब संकल्पोंका निवास स्थान है, जो सृष्टि की उत्पत्ति के लिये ब्रह्मा जी के मन से उपजते हैं। इस भण्डार में केवल ब्रह्माजीके संकल्प ही नहीं उत्पन्न होते। किंतु सृष्टिके उन स्पन्दों का फलभी इसमें संग्रह होता है, जो बुद्धिमानोंके संकल्पों, कामिक पुरुषों की वासनाओं और प्रत्येक लोक की अनंत रचनाओं से होता है। ब्रह्माण्ड की सर्व रचना के संस्कार आकाश में सञ्चित रहिते हैं। यद्यपि वह अति सूक्ष्म होने के कारण हमारे इन्द्रियों के गोचर नहीं होते, परंतु योगी जनों को वह ठीक इसी प्रकार देखने में आते हैं, जैसे कि स्थूल पदार्थ मनुष्य मात्रके दृष्टिगोचर होते हैं। आकाशिकचित्र कभी नष्ट नहीं होते, यह सदैव आकाश में गुप्त रीति से स्थित रहते हैं। इसी कारण इन चित्रों का नाम शास्त्रों में चित्रगुप्त प्रतिपादन किया है। और यही धर्म्मराज के लिपिकारों का बहा खाता है, धर्म्मराज के लिपिकार सब प्राणियों

के कर्म्मों को आकाश रूपी बही में चित्र द्वारा लिखते हैं। जिन पुरुषों का दिव्य चक्षु अर्थात् शिवनेत्र खुलजाता है, वही इस बही खाते को भली भांति पढ़ सकते हैं। योगी जन संयम द्वाराआकाशिकाचत्रोंकोदिव्य प्रकृतिमें प्रतिबिंबित कर दृश्यमान करसक्ते हैं, जैसे कि तमाशा करने वाले मैजिक लालटैन (Magic Lantern) द्वारा सचित्र शीशे की पट्टियोंके चित्रों को भीगे हुए वस्त्र पर प्रतिबिम्बित कर दिखलाते हैं॥

संसार के सर्व बृत्तांत विस्तार पूर्वक आकाशके बही खातेमें अङ्कित रहते हैं। योगी जन जब चाहें,इसखातेके पत्रोंको खोल प्राचीन समयकी रचनाओंके चित्रोंकोअपनी दृष्टिके सामने प्रत्यक्षकर सकते हैं। यह चित्र दीवारके चित्रोंके समान चेष्टा शून्य नहीं होते, वरञ्च नाटकके पात्रोंके समान चेष्टावान्होते हैं। यहचेष्टा ठीक उसीप्रकार की देखने में आती है,जैसे कि पूर्व काल की घटना में हुईथी॥

गत संक्षिप्त वर्णन को भली भान्ति विचारने से पाठकों को क़र्म्मों की गति कुछ २ प्रतीत होने लगेगी, अर्थात् यह समझ में आने लग जावेगा कि कर्म्म मनुष्य से किस विध नवीन कार्य्य कराता है। मानसिक चित्र मनस् से उत्पन्न होकर उस के साथ युक्त रहिता है और आकाश में अंकित हो जाता है। फिर इस से दिव्य मानसिक चित्र अथवा प्राण प्रतिष्ठित संकल्परूप उपज कर गगन मण्डल में भ्रमण करता है, और अनन्त परिणामों (Effects) को रचता है। यह सव परिणाम उस दिव्य मानसिक चित्र के लक्षणों से संयुक्त होते हैं, और इसी लिये यह जाना जासक्ता है, कि अमुक परिणाम कौन से दिव्य-मानसिक चित्रसे उपजा है। और दिव्य-मानसिक चित्र के द्वारा उस

का खोज मानसिक चित्र तक निकाला जा सक्ता है। जिस प्रकार मकड़ी अपना जाला अपनी ही प्रकृति से वनाती है, उसी प्रकार संकल्परूप भीं इन परिणामों को अपनी ही प्रकृति से निर्माण करता है। इसी वास्ते परिणामों के रंगोंका सूक्ष्म भेद देख कर संकल्परूप पहिचाना जा सक्ता है। चाहे कोई पारणाम (Eect) कितने ही संकल्पों के संयोगसे क्यों न वना हो, फिर भी प्रत्येक संकल्प का पता लगाना सम्भव और यह भी जान पड़ता है, कि संकल्प मन के कैसे भाव से उत्पन्न हुआ २ है। ऐसी दशा में हम अपनी क्षुद्र सांसारिक वुद्धि से यह समझ सकते हैं कि यमराज के दूतों को कैसे प्रत्येक मनुष्य के भिन्न२ कर्मों का पता किंचिन्मात्र दृष्टि देने से लग जाता है। उन को प्रत्येक मनुष्य के ऊपर, उसके उत्पन्न किये हुए मानसिक चित्रों का पूर्ण भार (Responsibility) और मानसिक चित्रों के समस्त पारणामों (Effect) का किंचित् भार (Partial Responsibility) तात्काल जान पड़ता है। परिणामों के किंचित् भार की न्यूनाधिकता, उन के उत्पन्न करने वाले संकल्पों के स्वभाव पर निर्भर है। इसी से समझ सकते हैं कि कर्म्म पाश के बल के निर्णय में प्रेरक हेतु को क्यों प्रधान और उन की क्रिया शक्ति को क्यों अप्रधान माना जाता है, और कर्म्म क्योंकर अपनी प्रकृति के अनुसार भिन्न २ क्रिया उत्पन्न करता है और अपने परिणामों के लगातार होने के कारण सब मण्डलों को संबन्धित रखता है।

संसारमें किसीको जन्मसे सुखी और किसीको दुःखी, पापी को फलते फूलते और धर्म्मी को निरपराध दण्ड पाते देख कर प्रायः मन में ईश्वर के न्यायकारी होने में संदेह उठा करता है। यदि

कर्म्मों की उक्तरीति को अच्छी तरह समझा जावे तो यह सन्देह निवृत्त हो जावेगा। कौन जानता है, कि अमुक पापी वा धार्म्मिक जन ने कैसे २ कर्म्म पूर्व जन्मों में किये हुए हैं, और इस जन्म में किस २ प्रकार के कर्म्म काया, बाणी, और मन द्वारा किये हैं। हम तो केवल मनुष्यों के थोड़े से साधारण कायक और वाचक कर्म्मों को ही देख कर अपनी २ सम्मति लगा दिया करते हैं।

अब हम पाठकों की सुगमता के लिये चित्त की उद्योगिता के तीनों परिणामों को नकशे में दिखलाते हैं, जिनसे कर्म्मों का मूलतव स्वरूप संक्षिप्त रीति से समझ में आजावे :—

मण्डल	प्रकृति	परिणाम
अध्यात्म	आकाश	आकाशिक चित्र जिन से चित्रगुप्त का बही खाता बना हुआ होता है।
गगण	(ऊर्द्ध) अतिसूक्ष्म	मानसिक चित्र जो मनुष्य की चेतना में रहता है।
	(अधः) सूक्ष्म	दिव्य-मानसिक चित्र जिनकी उद्योगिता गगन मण्डल में होती है।

इन्हीं परिणामों के अनुसार २य , जन्म में मनुष्य का स्वभाव, उस की योग्यता, पुरुषार्थ और दशा आदि बनते हैं। और इन का भोग नियम द्वारा होता है।

कर्म्मों की बनावट का सविस्तर वर्णन।

कर्म्मों को बनाने वाली सत्ता मनुष्य का अहंकृत भाव अर्थात् मनस् (Ego) है; यह एक सदैव उन्नति करने वाली सत्ता है। सृष्टि क्रम के चक्र के साथ साथ गमनागमन करते हुवे यह सत्ता विचार शक्ति और विज्ञान को प्रकाश करने की सामर्थ्य प्राप्त करती रहती है। जिज्ञासु जनों को सदैव स्मरण रखना चाहिये कि उत्तम मनस् और अधम मनस् वास्तव में एक ही हैं, परन्तु सुगमता के लिये,उन की भिन्न२ कार्य्यवाही की अपेक्षा से उनमें भेद किया जाता है,किन्तु स्वरूपकी अपेक्षासे नहीं। उत्तम मनस् मनस् का वह रूप है,कि जो पूर्व जन्मों में प्राप्त किये ज्ञान सहित ऊर्द्धलोकोंमें काम करता है। अधममनस् मनस्का वह रूप है,जो दिव्य प्रकृति का वस्त्र पहिर,काम में स्थित हो, गगन-मण्डल में कामिक क्रिया करता है। दिव्य प्रकृति से आच्छादित होने के कारण, उसकी दृष्टि न्यून हो जाती है, जैसे कि कुहर में मनुष्य की दृष्टि न्यून हो जाती है, सब पदार्थ धुन्धले से प्रतीत होते हैं, और दूर की वस्तु तो उसे दिखलाई ही नहीं देती। उत्तम मनस् के पूर्ण ज्ञानका एक अंश, अधम मनस् में प्रकाश करता है। प्रायः मनुष्यों में तो यह अंशमात्र ज्ञान भी वर्त्तमान जन्म की मोटी २ बातों का ही होता है। पूर्व जन्मके वृत्तान्तका ज्ञान तो, इस समय में योगी जनों के सिवा किसी को नहीं होता, व्यवहार में प्रायः मनुष्यों को अधममनस् ही अविनाशी जीव भासता है, इस को तत्ववेत्ता लोग मनुष्य का स्वत्व वा अधम अहंकार कहते हैं। सामान्य पुरुषों को आभ्यान्तरिक प्रेरणा (Voice of Conscience) अधम

मनस् की क्रियासे होतीहै। बहुधः भ्रमसे इसी प्रेरणा को ऐश्वरीय प्रेरणा वा आकाश वाणि भी कहते हैं एक प्रकारसे तो यह कहना अयोग्य नहीं है, क्योंकि जिन पुरुषों को आत्म ज्ञान प्राप्त नहीं होता, उन को उत्तम मनस् की प्रेरणा का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सक्ता। इस प्रेरणा का जो आभास दिव्य प्रकृति (astral matter) में पड़ता है, और जो अधम मनस् की चपलता से बहुत कुछ बदल जाता है, वही साधारण पुरुषों को प्रतीत होता है, इस से अधिक और कुछ उनको जान नहीं पड़ता। इस लिये यदि वह इस प्रेरणा को माननीय और ऐश्वरीय प्रेरणा समझे तो कुछ आश्चर्य नहीं। यह निश्चय रहे, कि अधम मनस् उत्तम मनस् से कुछ भिन्न नहीं है, जिस प्रकार जल की तरङ्गें जल से भिन्न नहीं और सूर्य्य की किरणें सूर्य्य से भिन्न नहीं, उसी प्रकार अधम मनस् उत्तम मनस् से भिन्न नहीं है। और जिस प्रकार सूर्य्य अपना प्रकाश आकाश में डालता है, और इसकी किरणें पृथिवी में प्रवेश हो कर नाना प्रकार की बनस्पतियों को उगाती हैं, और अन्यान्य रचनाओं को करती हैं, उसी प्रकार उत्तम मनस् तो ऊर्द्ध लोक में काम करता है, और उसकी किरण (अधम मनस्) अधो लोक में नाना प्रकार की चेष्टा और रचना करती है। यदि कोई जिज्ञासु इन में क्रिया भेद के सिवा और किसी प्रकार का भेद समझेगा तो वह ऐसे भ्रम जाल में फंसेगा कि जिस में से निकलना महा कठिन होगा॥

मनस् सदैव उन्नति कारक और बढ़ने वाली सत्ता है, इस की रश्मिको हाथकी उपमा भी दिया करते हैं। जिस प्रकार किसी वस्तु के पकड़ने के लिये जल में हाथ डबोया जाता है और पदार्थ

को पकड़ने के अनंतर् जल में से निकाल लिया जाता है, ठीक इसी प्रकार उत्तम मनस् की एक रश्मि अधोलोक में कार्य्य करने और तजुरबा (अनुभव) प्राप्त करने के लिये, संसार सागर में भेजी जाती है, और यथोचित अभिज्ञता की प्राप्ति के अनन्तर् संकुचित कर ली जाती है अब यदि रश्मि की क्रिया उत्तम और श्रेष्ठ होगी, तो मनस् की उन्नति भी अच्छी होगी। इस लिये रश्मि का गौरव उस ज्ञान से मापा जाता है, जो कि उसने अधः लोक में अपनी क्रिया से प्राप्त किया है। यह रश्मि एक ऐसे सेवक के समान है, जो कि क्षेत्र में जाकर अपने स्वामी के लिये काम करता है, और गरमी सरदी, धूप, छांव, वा मेंह बूंदी का कुछ विचार नहीं करता, और सायंकाल के समय अपने घर आ जाता है। परन्तु इतना भेद अवश्य है, कि वहां तो स्वामी सेवक भिन्न भिन्न हैं और यहां सेवक अपना स्वामी आपही है। उसके परिश्रम का फल उसी के भण्डार में संचय होता रहिता है, और सामग्री बढ़ती रहती है। प्रत्येक रश्मि (अहंकृत जीव) अविनाशी और नित्य सूत्रात्मा (उत्तम मनस्) की प्रतिनिधि (Representative) है, और अधोलोक में अपने स्वामी के स्थान कार्य्य करती है; और उन्नति करते २ जिस पद की स्वसंवेदना (Self-consciousness) इस के स्वामी ने प्राप्त की है, उसी के अनुसार उसकी शक्ति का विस्तार भी यून्नाधिक होता है। इस बात को भली भांति स्मरण रखना चाहिये, क्योंकि इसको भूल जाने से प्रायः जिज्ञासुओं के चित्त में ऐसा संशय उठा करता है, कि एक जन्मकी कार्य्यसाधक रश्मि वा अहंकृत जीव को, गत जन्म में अपने स्वामी की दूसरी कार्य्य साधक रश्मि के कृत कर्म्मों के फल क्यों भोगने चाहियें,

क्योंकि प्रत्येक जन्म की रश्मि (अहंकृत जीव) भिन्न २ होती है। इस प्रकार तो ईश्वर के न्याय में भी सन्देह उत्पन्न होता है। इस लिये हर एक जन्म के अहंकृत जीव को अपने ही किये कर्म्मों का फल भोगना चाहिये। इस बात को निश्चय पूर्वक जान लेना चाहिये, कि जो कर्म्मों का कर्त्ता है, वही उनका भोक्ता भी है। जो खेती को बीजता है वही काटता है; चाहे उसने उन कपड़ों को कि जिन्हें पहिर कर उसने खेती बोई थी, फटनेके पश्चात् त्याग कर नये वस्त्र भी क्यों न धारण कर लिये हों। इसी प्रकार उत्तम मनस् भी अपने बीजने के समय के चोले रूप वस्त्रों को जीर्ण हो जाने से त्यागकर, २य, जन्म रूप नये वस्त्रोंको धार कर कर्म्म रूप खेती काटता है। प्रत्येक जन्मका अहंकृत भाव देहके समान और सूत्रात्मा देही के तुल्य है। देहरूप वस्त्र के पलटने से देही नहीं बदलजाता। यदि उत्तम मनस् (बोने-वाला) एक वस्त्र धार कर (अर्थात् एक जन्म)में थोड़ेसे अथवा निकृष्ट अन्न बोएगा, तो २य, जन्म में नये वस्त्र धारण कर वैसी ही थोड़ी अथवा बुरी खेती काटेगा। इस लिये उक्तसंशय केवल व्यर्थ और भ्रम मात्रही है॥

मानसिक उन्नति की आदि अवस्थामें ज्ञान-बृद्धि अति मंद होती है, क्योंकि कामासक्ति के कारण मनस् संसार के रमणीय पदार्थों से मोह लिया जाता है। इस अवस्था में उस से उपजे हुए मानसिक चित्र प्रायः कामिक (Passional) जाति के होते हैं, और इसी लिये दिव्य मानसिक चित्र (Astro-mental images) दृढ़ और बली होने के स्थान, प्रमाथी (violent) और क्षणभंगुर होते हैं। मानसिक चित्रों की बनावट में, मानसिक अंश जितना अधिक होगा, दिव्य-मानसिक चित्र उतने ही दृढ़ाकार और बली होंगे।

दृढ़ और लगातार चिन्तनसे मानसिक चित्रों के आकार स्पष्ट होते हैं, और उन से उपजे हुए दिव्य मानसिक चित्र भी बली और चिरस्थाई होते हैं। जिन पुरुषों के चिन्तनसे ऐसे चित्र उत्पन्न होते हैं, उन के जीवन का एक विशेष उद्देश्य वा लक्ष्य हुआ करता है ऐसे पुरुषों का प्रत्येक कार्य उसी उद्देश्यकी प्राप्तिका एक साधन हुआ करता है। उनका चित्त स्वयमेव ही अपने लक्ष्य की ओर दौड़ा करता है, और उसके चिन्तनमें आनन्द अनुभव किया करता है। ऐसे चिन्तन से महाबली मानसिक चित्र उपजते हैं, और वही चिन्तक पुरुष की उद्योगता और अन्य क्रियाओं को बहुत कुछ सहायता प्रदान करते हैं॥

अब हमें यह विचारना है कि मानसिक चित्रों द्वारा कर्म्म पाश किस विध बनते हैं। मनुष्य एक जीवन भरमें मानसिक चित्रों के अनेक समूह उत्पन्न करता है। इनमें से कई समूह तो बली और स्पष्टाकार होते हैं, और पुनश्चिन्तन से निरन्तर पुष्टि पाते रहते हैं। कई एक निर्बल, परिछिन्न (vague) और क्षण भंगुर होते हैं। मनस्से उपजतेही यह नष्ट होजाते हैं, और चित्त भूमिमें नहीं ठहरते। मृत्यु के समय यह समूह मनुष्य के सामने प्रत्यक्ष रूप से आते हैं। यह समूह विविध प्रकार के होते हैं:-इन में से कोई तो शांति और मुमुक्षत्व भावनासे उपजे हुए होते हैं; यहसमूह भक्ति, परोपकार, ज्ञान प्राप्ति की इच्छा, धर्म्मानुकूल वर्त्ताव रखने, और परमार्थके निमित्त जीवन व्यतीत करने के संकल्पोंसे बना हुआ होता है। कई समूह विचार मात्रसे उत्पन्न होते हैं, मानो गूढ अध्ययन और मनन का परिणाम होते हैं। कई समूह पाशव वृत्ति और रागादि विकारों से उपजे हुए होते हैं। इन समूहों के कई

संकल्पों में तो साधारण प्रेम और दया अधिक होती है, और कइयों में काम, क्रोध, लोभ, मोह, और अहङ्कार आदि। कुछ समूह क्षुधा त्रिषा, निद्रा, प्रभृति, शारीरिक विकारोंको जीतनेके कारण उपजे हुए होते हैं, यह समूह अत्याहार (gluttony) उनमाद (drunkenness) और विषय भोग (sensuality) के संकल्पों से बना हुआ होता है। प्रत्येक मनुष्य की चेतना उसके विचारों के अनुसार पूर्वोक्त मानसिक चित्रों के समूहों से परिपूरत रहती है। कोई संकल्प, चाहे उस पर क्षणमात्र भी चिन्तन क्यों न किया हो, विनाश को प्राप्त नहीं होता। जिस संकल्प को मनुष्य एक बेर विचार लेता है वह उस की चेतना में सदैव कालके लिये अङ्कित (impressed) हो जाताहै। दिव्य मानसिक चित्र तो निस्सन्देह अपनी आयु व्यतीत होजानेपर विनाश को प्राप्त हो जाते हैं, परन्तु मानसिक चित्र कभी नष्ट नहीं होते, वरंच मृत्यु के पीछे जीव अपने चित्रों के समस्त समूहों को अपने साथ गगनमण्डल वा काम लोक में ले जाता है॥

काम लोक कई उपस्थानों में विभक्त है। मृत्यु के पश्चात् जब जीवात्मा काम युक्त उपाधि अर्थात् काम-रूप धारणा करके इस लोक में प्रवेश करता है, तो काम-मनस् की पाशव वृत्ति से उपजे हुए चित्र गगनमंडलके सबसे निचले उपस्थानमें उद्योगित होते हैं। स्थूल-बुद्धिवाले पुरुष तो इन चित्रोंमें मग्न हो उनकी प्रेरणा के अनुसार क्रिया करने लगते हैं, और आगामी जन्मों में वैसी क्रियायें करने के संस्कारों को दृढ करते हैं। जिस पुरुष ने कामिक विषयों पर चिन्तन करके, पाशव संकल्पोंको बहुत एकत्र करलिया है, वह भोग तृष्णा की तृप्ति के हेतु सांसारिक विषयोंकी ओर केवल खिंच कर ही न जावेगा, किंतु वह अपने मनमें उन्हीं भोग क्रियाओं

कों बारम्बार दुसरावेगा, और इस प्रकार आगामी जन्ममें वैसेही कर्म्मोंके करनेका स्वभाव दृढ कर लेगा। काम लोकके अन्य उप-स्थानों में भी उनके सम्बन्धित समूहों की ऐसी ही दशा होती है। अब ज्यों २ जीवात्मा निचले उपस्थानों में से निकल, ऊपर के उपस्थानों में गमन करता जाता है, त्यों २ ही घन प्रकृतिकेवने हुए पाशव संकल्पों के चित्र प्रकृति-हीन हो, उस की चेतना में प्रसुप्त अवस्था (Latent) धारण करते जाते हैं। यह स्मरण रहे कि एक उपस्थान की प्रकृति २य, उपस्थान में नहीं जा सकती; इसीलिये ज्यों२ सूक्ष्म अवस्था को जीव प्राप्त होता जाता है, त्यों २ ही वह स्थूल और घन प्रकृति के कोशों को त्यागता जाता है। और यह त्यक्त कोश धीमे २ परमाणुओं की वियोगिता के कारण नाश हो जाते हैं। और जब जीव क्रमशः सूक्ष्म से सूक्ष्म कोश को भी त्याग देता है, तो फिर वह गगनमण्डल से निकल स्वर्गलोक में प्रवेश कर जाता है, और सूक्ष्म अवस्था की प्राप्ति के कारण पाशव सं-कल्पों के चित्र द्रव्य-हीन होजाते हैं, इसीलिये जीव के साथ स्वर्गलोक में जाकर उद्योगित नहीं रहते। यह द्रव्य हीन चित्र केवल चिन्ह मात्र ही रह जाते हैं, इन्हीं को योगिनी मैडम ब्लैव-टस्की प्रकृति-शून्य आकार (Privations of matter) की संज्ञा दिया करती थीं। यह चिन्ह-मात्र चित्र प्रकृतिसे भिन्न होकर भी मनुष्य की चेतना में रहते हैं, और जब जीव संसार में जन्म लेने के अर्थ स्वर्ग से पीछे लौटता है, तो यह चित्र अपने२ स्वभावानुसार गगन मण्डल में से द्रव्य को अपनी ओर आकर्षण कर, दृश्यमान होते हैं, और उस जीव के सांसारिक जीवन में कामना, तृष्णा और रागादि रूपों में प्रकट होते हैं। यह क्रिया ठीक उसी प्रकार होती

है, जैसे कि बीज पृथिवी में से अपनी २ जाती के द्रव्य लेकर फल फूलों को उत्पन्न करते हैं ॥

इस स्थान में यह जतला देना अनुचित न होगा कि मृत्यु के अनन्तर गगनमण्डल में पहुंच कर जीव को पहिले पहिल अपने कई मानसिक चित्रों से कष्ट होता हैं । सांसारिक जीवन में उस जीव के निज चित्त की विकल्प और विपर्य्य बृत्तियों से उपजे हुए संस्कार भयानक रूप धार कर, उस के सन्मुख हो, उसे बड़ा दुःख देते हैं। वास्तव में तो इन भयानक चित्रों की सत्ता विश्व में तो कुछ नहीं होती, किन्तु भयानक और रोचक वचनों के सुनने और उनके अनुसार चिन्तन करनेसे उनके संस्कार जीव के चित्त में पड़ जाते हैं। गगनमण्डल में यही संस्कार सूक्ष्म प्रकृति के वस्त्र धारण कर जीव को भय देने लगते हैं ॥

कामना और तृष्णा से उपजे हुए समस्त मानसिक चित्रों की वही गती होती है, जोकि पहिले लिखी जा चुकी है। इन का पुनः प्रकाश जीव के भोगने के निमित्त द्वितीय जन्म में फिर होता है ॥

जिस समय जीवके कोष कामलोक में भिन्न २ हो विकृत (Disintegrate) होजाते हैं, तब लिपिकार अर्थात् ब्रह्माण्ड में कर्मों की रीति को सुनियमित रखनेवाले देवता, प्रत्येक जीव की कर्त्त-व्यता को पूरा २ तोल लेते हैं । उसी तोल के अनुसार वे जीव को दूसरे जन्म के लिये लिङ्ग शरीर का ढांचा तयार करके देते हैं ॥

अधःप्रकृतिसे निकल जीव देवचान वा स्वर्ग लोकमें पधारता है, और इस स्थान में उस के निवास का काल, उस के अति शुद्ध मानसिक,चित्रों की न्यूनाधिकता के अनुसार अल्प वा दीर्घ होता

है। इस स्थान में जीव को अपने पुराने उच्च २ साधन सब के सब फिर प्राप्त होते हैं, चाहे उस का निवास काल बहुत थोड़ा भी क्यों न हो। इन्हीं साधनों को साध कर जीव अगले जन्म के लिये नई २ शक्तियें प्राप्त करता है॥

देवचानिक जीवन परिपाक अथवा परिणाम (Assimilation) का समय होता है। इस समय में सांसारिक जीवन की सब भुक्तियां परिपक्क होकर मनस् का अंश बनती हैं, और इसी क्रिया से मनस् की उन्नति होती है। यह उन्नति चित्रों के विशेष २ रूपों और उन की संख्या के अनुसार होती है। जीव एक जाति के मानसिक चित्रों को संग्रह कर उनमें से एक सार निकालता है और फिर ध्यान द्वारा आंतरीय इन्द्रिय बना उसमें उस सार को शक्ति-रूप से स्थापित करता है। उदाहरण की रीति से कल्पना करो कि एक मनुष्य ने गूढ़ और सूक्ष्म विषयों के समझने का यत्न करने और ज्ञान प्राप्ति की अभिलाषा बारम्बार करने से बहुत से मानसिक चित्र उत्पन्न किये हैं। स्थूल देह त्यागने के समय तो उस की मानसिक शक्ति सामान्य अवस्था की होती है। देवचान में इन सब मानसिक चित्रों को मथन कर उन में से शक्ति निकाल, पहिले से अधिक सामर्थ्य वाली मानसिक कला ले वह संसार में जन्म लेता है। नये जीवनमें उसकी विचार शक्ति पहले से अधिक होगी, और वह ऐसे २ कार्य्यों को सिद्ध कर सकेगा, जोकि पहिले जन्म में उस की सामर्थ्य से बाहर थे। मानसिक चित्रों में से इस प्रकार सार निकालने का नाम ही चित्रों का परिपाक और परिणाम कहाता है। जब वह चित्र सार रूप बन मनस् का अंश बन जाते हैं, तो उनकी निज रूप सत्ता नष्ट हो

जाती है। यदि फिर आगामी जन्म में जीव इन चित्रों को उनके यथार्थ रूप में देखना चाहे,तो उसे चित्रगुप्त का बहीखाता ढूंढना पडेगा। क्योंकि इस बहीखाते में सब कर्म अंकित रहते हैं;अतः यदि एक मनुष्य अपनी मानसिक शक्तिको बहुतही बढाना चाहे, तो उसे उत्साह के साथ उनकी प्राप्ति की इच्छा करनी और उन की प्राप्ति को निरन्तर दृष्टिगोचर रखना चाहिये। क्योंकि एक जन्म की इच्छा और अभिलाषा दूसरे जन्म में शक्ति रूपसे प्रगट होती है, एक जन्म में किसी कार्य्य को संपूर्ण करने की इच्छा से दूसरे जन्म में उस कार्य्य करने की सामर्थ्य मिलती है। परन्तु यह स्मरण रहे कि जिस प्रकार के साधन मनुष्य करेगा वैसी ही सामर्थ्य उसे प्राप्त होगी, क्योंकि प्रकृति का यह बड़ा नियम है, कि असत्य में से सत्य कभी उत्पन्न नहीं होसक्ता। यदि मनुष्य अभिलाषा और इच्छा के बीज बोकर अपनी शक्तियों को काम में न लावेगा, तो देवचान में उस की खेती बहुत ही थोड़ी होगी॥

पुनश्चिन्तन से उपजे हुए ऐसे मानसिक चित्रों से, कि जिनका प्रेरक हेतु न तो कोई उच्च उद्देश्य हो और न निज सामर्थ्य से बढ़ कर कार्य्य करने की अभिलाषा ही हो, एक विकल्प-वृत्ति उत्पन्न होती है,मानो कि मस्तिष्क में ऐसी२ प्रणालियां (Grooves) बन जाती हैं कि जिन में से मानसिक शक्ति फिर स्वयमेव सुगमता के साथ विना प्रयत्न बहा करती है। इस ही कारण अति आवश्यक है कि चित्त को तुच्छ पदार्थों में कभी व्यर्थ भ्रमण न करने देना चाहिये। क्योंकि ऐसे भ्रमण से मलीन और क्षुद्र मानसिक चित्र वृथा उत्पन्न होते हैं, और चित्त में निवास करने लगते हैं। चित्त की चंचलता को रोकने का अभ्यास प्रत्येक जि-

ज्ञासु को उचित है। प्रथम तो चित्त को तुच्छ पदार्थों में भ्रमण करने से रोके, क्योंकि भ्रमण द्वारा विषय संयोग से मलीन वृत्ति उत्पन्न होती है। २य, चित्त में मलीन संकल्पों का आवेश न होने दें। ३य, यदि आलस्य के कारण मलीन संकल्प चित्त में आ भी जावें, तो उन को तत्काल चित्त में से निकाल डालना चाहिये। उन को चित्त भूमी में कभी निवास स्थान देना नहीं चाहिये। क्योंकि ऐसा न करनेसे मानसिक चित्र दृढ़ाकार हो भविष्यत में मानसिक शक्ति के प्रवाह के लिये प्रणालियां बना लेते हैं। इन हीं के द्वारा फिर मानसिक शक्ति का व्यय नीचेके स्थलों में हुआ करता है। क्योंकि विश्व में यह बड़ा भारी नियम है, कि किसी शक्ति का प्रवाह उस ही मार्ग में हुआ करता है, कि जिस में रुकावट न्यून से न्यून हो। यदि किसी अति उत्तम कार्य्य को करने की इच्छा वा अभिलाषा पूर्ण न होवे और इस अपूर्णताका कारण मनुष्य की असमर्थता या अयोगता न हो, किन्तु यथा उचित सामग्री और अवसर की अप्राप्ति अथवा हानिकारक विघ्नों की प्राप्ति हो, तो ऐसी दशा में उस इच्छा से जो मानसिक चित्र बना उन से देवयानिक मण्डल में मानसिक क्रियायें उपजेंगी। प्राणी के पुनर्जन्म लेने पर यह मानसिक क्रिया फिर कायक कर्म्म के रूप में प्रकट होती हैं। परोपकारी कार्य्यों के चित्रों से उपजी हुई मानसिक क्रिया प्राणी के चित्त में उन चित्रों को दृढ़ कर देती है। यह दृढाकार चित्र यथोचित सामग्री और अवसर के मिलते ही स्थूल क्रियाओं (Physical actions) में व्यतय होजाते हैं। जब किसी चित्र की मानसिक क्रिया भलीभांति अनुभव कर ली जाती है तब उस की स्थूल क्रिया का प्रकाश भी अटल होजाता है। अशुद्ध

वासनाओं से उपजे हुवे चित्रों की भी यही गती होती है । यद्यपि यह चित्र प्राणी के साथ देवचान में तो नहीं जाते किन्तु गगन मण्डल के उपस्थानों में ही रहजाते हैं और प्राणी के स्वर्ग से लौटते समय उस में अपना भाव प्रगट करते हैं। लोभ के पुनश्चिन्तन से उपजे हुवे चित्र चोरी कर्म्म में व्यतय होजाते हैं। कारण रूप कर्म्म सम्पूर्ण होजाता है और फल(effect) रूप स्थूल क्रिया अटल हो जाती है, जब कि चेतना मानसिक चित्रों से भरती २ ऐसी अवस्था को प्राप्त हो जावे कि केवल एक वेर का चिन्तन मात्र उसे स्थूल क्रिया में पलटा दे सके। यह बात नहीं भूलनी चाहिये कि पुनराभ्याससे कार्य स्वभाविक(automatic)होजाता है। और यह नियम स्थूलमंडल ही में नहीं, किंतु सर्व मंडलों में वर्तमानहै । यदि गगनमण्डलमें कोई क्रिया वारम्वार, दुसराई जावेतो वह स्वभाविक होजावेगी और अवसर पाकर स्वयमेव अपने आपको स्थूलरूप में प्रगट करेगी। कितनी एकवेर पाप करने के पश्चात् यह कहा जाता है "कि हा यह कर्म तो बिन सोचे ही होगया, इसका तो मुझे ध्यान तक भी था, यदि क्षण भर भी इस को विचार लेता तो ऐसा कर्म्म न करता;"यह कथन बहुत ठीक है। निस्संदेह बिचार पूर्वक किसी सोचे समझेहुए हेतुसे प्रेरित होकर उसने यह कर्म्म नहीं किया;कर्त्ता को तो उन संकल्पों का ज्ञान भी नहीं होता है, जो कि उस कर्म्म को करने के पूर्व उसके चित्त में आचुके हों, और न उसको उन कारणों के क्रम का ही कुछ पता होता है, कि जिनका आवश्यक फल यह स्थूल कर्म्म है। इस प्रकार कर्त्ताके सचेत हुवे बिना ही उसके मानसिक चित्र स्वयमेव स्थूल रूप बन जाते हैं । यह स्थूलरूप आवश्यक और अटल है ।

यदि कोई कहेकि यह कर्मआवश्यक क्यों है,मनुष्यकी स्वतंत्र इच्छा से क्यों नहीं रोका जा सक्ता ? तो इसका उत्तर यह है, कि इच्छा की स्वतन्त्रता एक ही प्रकार के मानसिक चित्रों को वारम्बार बनाना स्वीकार करने में क्षीण (exhausted) होगई है, और इसलिये स्थूल क्रिया नहीं रुक सकती। स्थूल उपाधि तो मन की अनुचारणी है, उसे मानसिक प्रेरणा के अनुसार क्रियायें करनी पड़ती हैं। एक जन्म में किसी कार्य्य को हठ पूर्वक करने से स्वभाव उत्पन्न होता है। किसी कार्य्य की अभिलाषा करनी क्या है, मानों कि प्रकृति से एक याचना करनी है, कि जिसका उत्तर वह कार्य्य की सम्पूर्णता निमित्त एक यथोचित अवसर अभिलाषी पुरुष को प्राप्त करा कर देती है ॥

स्मृतिमें एकत्र हुवे २ मानसिक चित्र उन भुक्तियोंके संस्कार होते हैं, कि जिनको जीवात्मा अपने सांसारिक जीवन में सहन करता है, मानो कि यह उस पर वाह्य सृष्टि की क्रियाओं के ठीक २ चित्र होते हैं। इन चित्रों को भी जीवात्मा मथन करके उनसे सार निकाल लेता है, इन चित्रों पर निधिध्यासन और ध्यान करके वह सीखता है, कि उनमें परस्पर संवन्ध क्या है और उनसे महत् तत्व (Universal Mind) की कार्य्यवाहीमें किस प्रकार का असरप्रगट होताहै, कि बहुना, शान्ति पूर्वक उन चित्रों पर विचार करकेवह शनैः२ सर्व उपदेश जो उनसे सीखने योग्य होते हैं,सीख लेता है। प्रत्येक सुख से अन्त में दुःख की उत्पत्ति और दुःख से सुख की प्राप्ति देख कर पुरुष को यह ज्ञान होता है, कि प्रकृति में ऐसे २ नियम वर्त्तमान हैं, कि जिनको उलङ्घन नहीं किया जा सक्ता है, और इस लिये उन के अनुकूल ही आचरण रखना आ-

वश्यक है। प्रायः देखने में आता है, कि किसी कार्य्य में सिद्धि और किसी में असिद्धि होती है, कभी आशा पूर्ण होती है, और कभी भङ्ग, कभी कभी ऐसे २ भय प्राप्त होते हैं, कि जोपीछे से निर्मूल और मिथ्या निकलते हैं, मनुष्य अपने आप को बड़ा बलवान् समझता है, परन्तु परीक्षा के समय उस का बल झूठा पड़ जाता है; मनुष्य समझता है, कि मुझे अमुक वस्तु का पूर्ण ज्ञान है; परन्तु पीछे मालूम होता है, कि वह ज्ञान तो सर्वथा मिथ्या ही था, युद्ध के समय देखने में हार प्रतीत होती है, किन्तु धैर्य्य और उत्साह रखने से अन्त में जीत हो जाती है, विजय के पश्चात् प्रमाद और असावधानी के कारण हार होजाती है। इन सब बातों पर पुरुष विचार करता है, और निज रसायन के द्वारा इन सर्व मिश्रित भोगों को स्वर्ण रूपी ज्ञान में बदल लेता है। और इस ही वास्ते आगामी जन्म में पहिले से अधिक ज्ञानवान् होकर संसार में आता है, और उस के आडम्बर को ज्ञानरूपी कसौटी के द्वारा परखता है। यहां भी मानसिक चित्र ज्ञान में व्यत्यय हो जाते हैं, और निज रूप में स्थित नहीं रहते। उन के पुराने रूपों को यदि देखने की इच्छा हो, तो कर्मों के बही खाते को देखना पड़ेगा॥

भुक्तियों के मानसिकचित्रों से और विशेष करके उन चित्रों से कि जो यह बतलाते हैं, कि धर्म्मको न जानने सेक्योंकर कष्ट होता है, अन्तःकरण में पश्चात्ताप वृत्ति उत्पन्न होती है। जीव अनेक जन्मों में बासना के वश होकर रमणीय पदार्थों के पीछे बड़े वेग से भागता है और कष्ट सहता है। इन भुक्तियों से उसे यह शिक्षा मिलती है, कि धर्म्म के प्रतिकूल भोग भोगने से सदा दुःख

ही प्राप्त होता है, और जब किसी आगामी जन्ममें वासना फिर प्रबल होकर उसे किसी अयोग्य भोग की ओर प्रेरणा करके उसे चलायमान करती है, तो झट उस में पिछले पश्चात्ताप की स्मृति जाग उठती है और उस भोग की निषेधिता का डंका बजाती है, और इन्द्रियों के वेग से दौड़ते हुये घोड़ों की बाग खैंच कर उन्हें ठहरा देती है। मानसिकोन्नतिकी वर्त्तमान दशामें अतिमन्दमति वाले मनुष्यों के सिवाय अन्य सर्व पुरुषोंको इतना तजरुबा तो हो चुका है, कि जिस के द्वारा उनको यह मालूम हो जावे, कि सामान्य रीतिसे धर्म्म क्या है, अधर्म्म क्या है, दैव प्रकृति (Divine Nature) के अनुकूल और प्रतिकूल कौन कौन से आचरण हैं। परन्तु बहुत से गूढ़ और सूक्ष्म विषयों पर, (कि जिन का संबन्ध उन्नति की उस दशा से है, जो अब व्यतीत हो रही है, न कि उस दशा से जो भूत काल में व्यतीत हो चुकी है) तजरुबा इतना थोड़ा सा है, कि उस से अभी तक अन्तःकरण में पश्चात्ताप वृत्ति उत्पन्न नहीं हुई है। इसी कारण ऐसे विषयों की मीमांसा में मनुष्य भूल ही करता है, चाहे वह उनको ठीक २ समझने और नियमानुसार उनका व्यवहार करने में कितना ही समाहित होकर यत्न क्यों न करे॥

धर्म्मानुसार विचरने की इच्छा से ऊर्द्ध लोकों में तो दैवी प्रकृति (Divine Nature) के साथ उनकी ऐक्यता होजाती है, किन्तु अधोलोक में धर्म्म की आज्ञापालन करने की विधि का अज्ञान ज्यों का त्यों बना रहेगा, आगामी जन्मोंके लिये उसका यहअज्ञान उस कष्ट से निवृत्त होता है, जो उसे अवधि पूर्वक आज्ञा पालन करने के बदले में मिलता है; यह कष्ट उसे वह २ ज्ञान सि-

खलाता है कि जो उसे पहिले न था। सन्ताप वाली भुक्तियों से अन्तःकरण में पश्चात्ताप वृत्ति उत्पन्न होती है। इस के कारण भविष्यत में कष्ट की पुनरा-वृत्ति नहीं होती है। पुरुष को ऐश्वरीय शक्ति के पूरे २ ज्ञान होने से, सृष्टि के धर्म्मानुकूल ज्ञानसहित वरताव करने और उसकी उन्नति में सहकारी बनने का आनन्द प्राप्त होता है॥

इस प्रकार कारण रूप मानसिक-चित्रों की गती होती है, अभिलाषा और वासनाओं का परिणाम सामर्थ्य में, पुनराचिन्तन का परिणाम स्वभाव (tendencies) में, किसी अनुष्ठान की चेष्टा का परिणाम क्रिया में, भुक्तियों का परिणाम ज्ञान में, और सन्ताप वाली भुक्तियों का परिणाम पश्चात्ताप वृत्ति में होता है॥

दिव्य मानसिक चित्रों की गति का वर्णन आगे होगा॥

कर्म्मों के लेखे का भुक्तान।

जब जीवात्मा अपना देवचानिक जीवन व्यतीत कर चुकता है, और अपने पूर्व सांसारिक जीवन की भुक्तियों के सार को निज अंश बनाचुक्ता है, तो फिर सांसारिक जीवन की अभिलाषा के वश होकर पृथ्वी की ओर खिंच कर आने लगता है। देवचानिक जीवन की अंतम अवस्था अब उस के सामने होती है। इस अवस्था में जीवात्मा सांसारिक जीवन की अन्य भुक्तियों के वास्ते नये वस्त्र धारण करता है। जीवन की यह अवस्था उसके जन्म द्वार में से गुजरने पर वन्द होजाती है॥

देवचान की देहली को उलङ्घन करके और वहां की उद्योगिता के थोड़े बहुत फलों को अपने संग लेकर जीवात्मा उस

मण्डल में प्रवेश करताहै कि जिसे पुनर्जन्म का मण्डल कहते हैं। यदि जीवात्मा बाल्यावस्था में हो, तो उस को फलों की प्राप्ति अति अल्प होती है, क्योंकि मानसिक उन्नति की आदि अवस्था में बृद्धि इतनी न्यून होती है, कि जिस को प्रायः पाठकों की बुद्धि नहीं माप सक्ती। इस अवस्था में एक २ जन्म एक २ दिन के समान होता है। और जैसे बालकों का बहुत समय किसी विशेष ज्ञान की प्राप्ति बिना ही व्यतीत होता है। वैसे जीवात्मा के भी जन्म जन्मान्तर इसही प्रकार व्यतीत होते हैं। प्रत्येक जन्ममें किञ्चित् मात्र सा बीज बोया जाता है, और देवचान में उस का किंचित् मात्र सा फल पकता है। फिर ज्यों २ शक्तियें बढ़ती जातीहैं,त्यों२बुद्धि भी तीव्र होती जाती है। जो जीवात्मा भुक्तियों का बहुत सा भण्डार एकत्र करदेवचान में जाता है, वह उपरोक्त नियमों के अनुसार बड़ी बड़ी शक्तियें लेकर वहां से लौटता है। जीवात्मा उस उपाधि को धारण करके जोकि मन्वन्तर तक स्थिर रहती है, देवचान से निकलता है, और अपने अहंकृत भाव वाले तेज से आच्छादित होता है, इस तेज की चमक, उस के रंगोंका प्रकाश, उसका परिणाम और लक्षण उसकी निज उन्नति के अनुसार न्यून वा अधिक होते हैं। संसार की ओर लौटते समय जब जीवात्मा गगनमण्डल में आता है, तो वह अपनी कामोपाधि को पोषण करता है। और यह उसकी प्रारब्ध कर्म्मों की गति का प्रथम फल है। जो मानसिक चित्र कि उसने भूत काल में काम से प्रेरित होकर निर्माण किये थे, और जो कि देवचान में जाते समय उस की चेतना में प्रशान्त होगये थे, (और जिन को योगिनी मैडम ब्लैवट्सकी जी "प्रकृति शून्य चित्रों" की संज्ञा

दिया करती थीं) अब फिर उस की चेतना में प्रगट होते हैं और गगन मण्डल की प्रकृति में से अपने स्वभावानुसार कामिकद्रव्य आकर्षण करके उस जीवात्मा की नवीन काम उपाधि में तृष्णायें और अधो वासनादि उत्पन्न करते हैं । जब यह कार्य्य पूरा हो चुकता है, कि जिस में कभी थोड़ा और कभी घना समय लग जाता है, तो जीवात्मा अपनेही निर्माण किये हुये वस्त्र धारण करके खड़ा होता है, और कर्म्म रीति के अधिपतियों के हाथों से उस लिङ्ग शरीर को धारण करने के लिये सज्जी भूत होता है,जो कि उस के वास्ते उस ही के एकत्र किये हुये द्रव्यों से बनायागया है, और जिस के ढांचे पर उसके निवास के लिये स्थूलोपाधि बनेगी । मनुष्य का अस्मिभाव (individuality) और अहंकृत भाव (personality) उस का अपना बनाया हुआ होता है । मानो कि जैसी उस ने कल्पना की थी वैसा ही वह बन गया । उस के सर्व लक्षण और गुण उस के अपने चिन्तन के फल होते हैं । निस्संशय मनुष्य अपना उत्पादक आप ही है । और अपने भविष्यत् का पूरा२ आप ही उत्तरदाता है ॥

परन्तु प्रथम तो उसे स्थूल और लिङ्ग देह की प्राप्ति करनी पड़ती है,कि जो उसकी उपयोगिताको बहुत कुछ सीमा बद्ध करेगी । २य,उसे नियत अवस्थामें रहना है, और इसके वास्ते योग्य बहिर संबन्धों की प्राप्ति आवश्यक है। ३य, उसे उस मार्ग पर चलना है, जिस को इसने निज कर्मानुसार बनाया है, ४र्थ, उसे अपने कर्म्म भोग-अथवा सुख दुःख को भोगना है । इन सब बातों की प्राप्ति के अर्थ निज सामर्थ्य के अतिरिक्त किसी अन्य सहायताकी आवश्यक्ता भी प्रतीत होती है।मनुष्य की शक्तियों के

प्रकाशके वास्ते इनसर्व योग्य संबंधों की उपलब्धि क्योंकर हो सक्ती है ॥

इस विषय में अब हम ऐसी भूमिका तक पहुंच गये हैं, कि जिसका यथार्थ वर्णन करना अति कठिनहै । क्यों कि यह भूमिका उन महात्माओं और मुनियों की है, कि जिन के लक्षण हमारी सीमाबद्ध इन्द्रियों के अगोचर हैं । उन की सत्ता और उद्योगिता का पता तो लगता है, परन्तु उन की चेतना का बोध हमारी शक्तिसे बाहरहै, उनकी अपेक्षा हमारी वही दशा है, जोकि हमारी अपेक्षा कृम्यादि की दशा होती है । कृमि हमारी बाबत इतनां तो जानते हैं, कि हम सत्ता रूप हैं, परन्तु उसे हमारी चेतना की कार्य्यवाही का किञ्चित् मात्र भी बोध नहीं होता है । इन महात्माओं को लिपिकार और दिक्पाल कहिते हैं ॥

श्रीमती योगिनी मैडम ब्लैवटसकी अपने ग्रंथ गुप्त सिद्धान्त (Secret Doctrine) के चौथे श्लोक की टीका नं०६,में लिपिकारों का वर्णन करती हैं । वहां लिखा है कि "लिपिकार जगत के देवगण होते हैं । इन का सम्बन्ध सृष्टि के उस अति गुप्त विभाग के साथ है, जो यहां प्रगट नहीं किया जा सकता । बड़े से बडे सिद्ध पुरुष भी इन देवगणों के तीनों विभागों को पूरा २ जानते हैं या नहीं, इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये ग्रन्थ कर्त्ता तय्यार नहीं है; वरं उसकी सम्मति का झुकाव इस पक्ष में हैं कि महा सिद्धों को भी पूरा २ इनका ज्ञान नहीं होता है। इस विषय में केवल एक बात विज्ञात है कि लिपिकाओं का सम्बन्ध कर्म्मों के बही खाते से है"॥

यह देवगण उस आकाशिक खाते को रखते हैं, जो कि

ऊपर वर्णन किये हुये चित्रोंसे परिपूरित रहता है। इनका सम्बन्ध प्रत्येक मनुष्य के प्रारब्ध और प्रत्येक बालक के जन्म से होता है।

लिपिका लिङ्ग शरीर का ढांचा चार दिक्पालों को देते हैं। इस ढांचे क नमूने पर ऐसा स्थूल देह बनाया जाता है कि जिस के द्वारा उस में निवास करने वाले जीवात्मा की मानसिक और कामिक शक्तियें प्रकट होसकें॥

चतुष्क महाराजाओं वा दिक्पालों का वर्णन भी गुप्त सिद्धान्त में आया है। यह चारों ध्यानी चोहानों के महाराज होते हैं। यही चारों दिशाओं के अधिपति वा दिक्पाल कहलाते हैं। स्थूल लोक में यही मनुष्य जाति के रक्षक और कर्म्मों के विधान कर्त्ता होते हैं॥

लिपिकाओं से लिंग शरीर के प्रकृतिशून्य ढांचे को लेकर महाराजा उस में प्रकृति निर्म्माण करने के अर्थ ऐसे २ द्रव्यों को लेते हैं, कि जिन में उन गुणों को प्रकाश करने की योग्यता होती है, जो उस ढांचे के द्वारा प्रगट होने हैं। यह लिंग शरीर प्राणी के लिये योग्यकामिक उपाधि होता है। यह उपाधि प्राणी को अपनी प्राप्त की हुई शक्तियों को प्रकाश करने की सामर्थ्य देती है और साथ ही उस पर ऐसी २ अवधियां (Limitations) भी लगातीहै जो कि गत जन्ममें प्राप्त काल को वृथा खोने और अन्यान्य न्यूनताओं के कारण कर्म्मानुसार उस पर लगनी हैं। लिंग शरीर के इस ढांचे को चतुष्क महाराज ऐसे देश, जाति, कुटंब, और भाईचारे में ले जाते हैं जहां कि प्राणी को अपने प्रारब्ध कर्म्मों के भोग में योग्य अवसर (मौका) मिले। किसी एक जन्म में समस्त संचित कर्म्मों को नहीं भोगा जा सकता। और

नाहीं एक ऐसी उपाधि बनाई जा सकती है कि जिसके द्वारा वे सब शक्तियें प्रगट हो सकें, जो प्राणी ने धीरे २ अनादि भूतकाल में प्राप्त की हैं और न ऐसे वहिर संबन्ध (external surroundings) ही एकत्र किये जा सकते हैं, कि जिन को प्राप्त करके प्राणी भूतकाल में बीजी हुई समस्त खेती को काट सके और अपने पिछले जन्मों के अन्यान्य सम्बन्धियों की तरफ़ अपनी कर्त्तव्यता और धर्म्म को पूरा कर सकें। समस्त कर्म्मों के केवल उस भाग के वास्ते एक योग्य (suitable) लिंग शरीर बनाया जाता है, कि जिन के भोग का प्रवन्ध एक जीवन भर में संभव है। यह लिंग शरीर योग्य स्थान की ओर ले जाया जाता है, यह ऐसे स्थानों में ले जाया जाता है जहां कि प्राणी का सम्बन्ध उन प्राणियों में से चन्द एक के साथ हो सके, जो इस के साथ गत जन्मों में सम्बन्धित थे। और जिन का जन्म इस दुनिया में या तो हो चुका है, या इस के सामने होने वाला है। उसके वास्ते देश ऐसा चुना जाताहै जहांकि धार्मिक,सामाजिक, और राज सम्बन्धीय व्यवहार इस प्रकारके हों कि उसको अपनी कर्त्तव्यताके पूराकरनेमें योग्य अवसर मिले। इसही प्रकार जाति भी ऐसी चुनी जाती है,कि जिसके लक्षण उस प्राणीके लक्षणों के सदृश हों। कुटंब वा वंश उस के वास्ते ऐसा चुना जाता है कि जिस की स्थूलोपाधि परम्परा से ऐसे २ स्थूल द्रव्यों से बनती चली आई है, जो कि उस के लिंग शरीर में निर्म्माण किये जाने पर उसके स्वभावानुसार व्यवहार करे। अर्थात् उसे ऐसे कुटंब में ले जाया जाता है, कि जिस की स्थूलोपाधि में से मानसिक और कामिक स्वभावको प्रगट करने के अर्थ यथोचित द्रव्य

उस के लिंग शरीर में निर्माण किये जो कि प्राणी के अनन्त गुणों और सांसारिक विविध प्रकार के द्रव्यों में से किन्हीं ऐसों का संयोग किया जाता है, जोकि परस्पर सजातीय होते हैं। जन्म लेने वाले प्राणी के वास्ते एक ऐसी योग्य उपाधि का प्रबन्ध देश कालादि के संबंध सहित किया जा सकता है कि जिस के द्वारा वह अपने कर्म्मों के एक अंग को भोग सके, ऐसे प्रबन्ध के वास्ते आवश्यक ज्ञान और शक्ति चाहे हम को अपनी तुच्छ बुद्धि की अपेक्षा में कितनी ही अप्रमेय क्यों न प्रतीत हो तथापि इतना तो अवश्य प्रतीत होता है, कि ऐसे २ प्रबन्ध संभव हैं, और उन में न्याय भी पूर्ण रीति से किया जा सकता है। निःसंशय ऐसा तो हो सकता है कि मनुष्य के प्रारब्ध कर्म्मों का जाल इतने सूत्रों से बुना हुवा हो कि जिन को हम न गिन सकें, और जिन को निर्म्माण करके एक ऐसा अद्भुत आकार बनानेकी आवश्यकता हो कि जिस को हम खियाल भी नहीं कर सकें, ऐसे आकार की बनावट में जब कोई सूत्र अदृश होता है, तो वह नाश को प्राप्त नहीं होता है किन्तु वह केवल उस आकार को अधःपट (under surface) की ओर चला जाता है और बहुत शीघ्र ही फिर उत्तर पट की ओर आकर दृश्य हो जाता है, इसी प्रकार जब कोई सूत्र अचानक आकार के किसी स्थान पर आकर दिखाई देने लगता है, तो वह केवल अधःपटसे निकल कर उत्तर पट में आया है। चूंकि हम उस आकार के एक छोटे से टुकड़े को देखते हैं, इस वास्ते हमारी अल्प दर्शन शक्ति उस के सर्व लक्षणों को ग्रहण नहीं कर सकी।

पश्चिम देशके दूरदर्शी और ज्ञानवान् (Iamblichus) आयमब-

लिकस नामी महात्मा इसप्रकार लिखते हैं, कि जो व्याख्या न्याय की हम को ठीक प्रतीत होती है, वह देवताओं को ठीक नहीं प्रतीत होती है। क्योंकि हम केवल अतिक्षणिक दशाही को दृष्टि-गोचर करके वर्त्तमान पदार्थों और क्षणिक जीवन और उस के सम्बन्धों पर ध्यान देते हैं। किन्तु हम से अधिक शक्ति वाले देवताओं को प्राणी का समस्त जीवन मालूम होता है, उन को प्राणी के सर्व पिछले जन्मों का वृत्तान्त मालूम होता है॥

उन्नति के मार्ग पर चलने वाले पुरुष का ज्ञान ज्यों २ बढ़ता जाता है त्यों २ उस का यह विश्वास दृढ़ होता जाताहै कि संसार की सर्व क्रियायें पूर्णनीति और न्याय पूर्वक होतीहैं, क्योंकि उन्नति करके जब पुरुष ऊर्द्ध लोकों में जा और वहां की लीला को दृष्टिगोचर कर, उस ज्ञान को जाग्रत अवस्था की उपाधि में लाने लगता है तब यह निश्चय अधिक होता जाता है और इस से आनन्द भी अधिक होता है कि सत नीति का व्यवहार इस प्रकार होता है कि उस में कभी भूल वा चूक नहीं होती और उसके अधिकर्त्ता गण ऐसी निरभ्रान्त अन्तरदृष्टि और सुनिश्चित बलके साथ काम करते हैं कि जिसमें कभी किसी प्रकार का दोष नहीं आता और इस लिये संसार और उस में मुक्ति के प्रयत्न करने वाले जीवों के साथ जो कुछ वर्तता है वह ठीक २ ही है। "सर्व ठीक है" इस प्रकार के शब्दों की गूंज अंधेरे में उन संरक्षक महात्माओं की तरफ से आती हुई सुनाई देती है जोकि हम संसारी जीवों को अन्धकार में पथ दर्साने के लिये दिव्य विज्ञान रूप दीपक दिखलाते हैं। इस नीतिके व्यवहार करने के कुछ नियम हम समझ सक्ते हैं और इन नियमों के ज्ञान से हमें किसी

घटना के कारणों को ढूण्डने और किसी कर्म के फलों को समझने में बहुत सहायता मिलती है।

इसके पूर्व यह वर्णन हो चुका है कि मननद्वारा स्वभाव बनता है। अर्थात् जैसा चिंतन मनुष्य करता है, वैसाही उसका स्वभाव होजाता है। अब इस बात को समझना है कि कायक कर्म्म मनुष्य के लिये वहिर संबन्ध (environment) पैदा किया करते हैं। कर्मों की गति में यह तथ्य अत्यावश्यक है और इसलिये इस का कुछ सविस्तर वर्णन करना लाभदायक होगा। मनुष्य अपनी क्रियाओं द्वारा स्थूल मण्डल में अपने पड़ोसियों पर असर डालता है, वह अपने चारों ओर सुख फैलाता है या दुःख,और इस रीति से मनुष्य जाति के सुख को घटाता है वा बढ़ाता हैं, सुख की इस अधिकता वा न्यूनता के कई प्रेरक हेतु हो सक्ते हैं, शुभ अशुभ वा मिश्रित । एक मनुष्य करुणा से प्रेरित हो केवल इस नियत से कि नगर निवासियों को सुख पहुंचे,एक कर्म्म करताहै। मानो कि वह कोई धर्म्मशाला वा शिवालय वनाता है। दूसरा मनुष्य ऐसा ही कर्म्म अपना बड़पन और धनाढ्यपन दिखलाने की नियत से करता है, और चाहता है कि लोगों की दृष्टि मेरी ओर आ जावे और मुझ को बिरादरी में चौधरी माना जावे । तीसरा मनुष्य ऐसा ही कर्म्म मिश्रित नियत से कि जिस में कुछ स्वार्थता मिली हुई हो करता है। इन तीनों मनुष्यों को नियतोंका फल आगामी जन्मों में उनके स्वभाव में प्रगट होता है। इसही वास्ते कोई तो जन्मही से सुशील होता है,और कोई जन्म से कठोर, किन्तु स्थूल मण्डलमें तीनों के कर्म्म एक समान हैं, उनसे नगरको एक ही समान लाभ होता है। नियतोंके भेदसे लोगोंके सुखमें कुछ

भेद नहीं पड़ता। इस लिये एक समान सुख प्रदान करने के बदले में प्रकृति माता को अपने नियमानुसार उनका ऋण उतारने के लिये उन्हें एक समान सुख इस संसार (स्थूल मण्डल) में देना पड़ता है। इसी प्रयोजन से उन को ऐसे देश, काल और कुटम्ब में जन्म मिलता है, कि जिन के सम्बन्ध से उनको सांसारिक सुख का भोग प्राप्त हो। ऐसे सम्बन्धों को प्राप्त हो कर उन से सतमार्ग में काम लेना और अपना आनन्द उठाना, बहुत कुछ उन के अपने स्वभाव पर निर्भर है। इस ही वास्ते प्रति दिन देखने में आता है कि कोई धनाढ्य तो आनन्द भोगता है और सत्मार्ग में अपना धन खुशी खुशी लगाता है और कई धनाढ्य ऐसे होते हैं, कि उन का धन कुमार्ग में व्यर्थ लुटता है और उन को कुछ आनन्द भी नहीं होता है। उन की प्रवृत्ति सत्मार्ग में कुछ नहीं होती है। कई धनाढ्य सुख संपदा को प्राप्त होकर जन्म से लेकर किसी न किसी क्लेश से पीड़ित रहते हैं, किञ्चित् मात्र भी शान्ति उन को प्राप्त नहीं होती है। सत्य है कि जैसा बीजोगे वैसा ही काटोगे। कोई बीज निष्फल नहीं रहता। ईश्वर महा न्यायकारी है॥

जो मनुष्य प्राप्य अवसर को यथा शक्ति पूर्णरीतिसे परोपकार में व्यतीत करता है, उसे इसके बदले आगामी जन्म में परोपकार करने का विशेष समागम मिलता है। जो मनुष्य वर्त्तमान जीवनमें अपने संसर्ग में आने वाले प्रत्येक मनुष्य की सहायता करता है, उसको आगामी जन्म में ऐसे सम्बन्धों में देह मिलता है कि जहां परोपकार और सेवा करने का समय उसे बहुत ही प्राप्त हो॥

इसी प्रकार प्राप्य अवसरको व्यर्थ खोने का फल यह होताहै,

कि आगामी जन्ममें मनुष्य की देह रोगी और बिकारी होगी और उसके वाह्य सम्बन्ध क्लेश दायक होंगे । उसके आकाशिक द्वितीय (Etheric double) के मस्तिष्कमें कुछ न्यूनता रहेगी और इसी वास्ते स्थूलदेह का मस्तिष्क भी विकारी बनेगा। देहधारी किसी साध्यके उपाय की चिन्ता और कल्पना तो कर लेगा, परन्तु उस के अनुष्ठान में अपने आप को असमर्थ पावेगा, और किसी विषय का अनुभव तो कर लेगा, किन्तु उस का प्रत्यय मस्तिष्क में स्पष्टाकार न जमा सकेगा। वृथा खोया हुआ समय व्यतय होकर निष्फली भूत वासनाओं और इच्छाओंके रूपमें प्रकट होता है,सहायता प्रदान करने की इच्छा तो होती है, किन्तु उस के कर्त्तव्य साधन में विघ्न पड़जाते हैं। और यह विघ्न उसकी अपनी शक्तिकी न्यूनता वा अवसर की अप्राप्ति के कारण होते हैं ॥

इसी नियम के अनुसार माता पिता की गोद में से उन के लाडले और अति सुन्दर बालकों को और कुटम्बों में से किसी पूज्यमान् भद्रयुवा को मृत्यु छीन ले जाती है। यदि कोई मनुष्य अपने किसी सम्बन्धी के साथ क्रूर वर्ताव करे वा उस की रक्षा और पालन में अपना यथोचित धर्म पूरा न करे, तो अतीव संभव है, कि आगामी जन्म में वह अपने आप को उस तिरस्कृत संबंधी के साथ किसी निकट गूढ़ सम्बन्ध में पावेगा। सम्भव है कि यह सम्बन्ध बड़ा ही कोमलात्मक हो,और अकाल मृत्यु के कारण अंत में महाक्लेशकारी हो। तिरस्कृत मनुष्य अपने तिरस्कारीका इकलोता पुत्र बन कर आता है, और समग्र धन का भागी, अपने माता पिता की दृष्टि में होता है। परन्तु जब अकाल मृत्यु इस पुत्र को अकस्मात् ग्रास कर गृह को नष्ट कर जाती है, तब उसके माता पिता

को इस बात पर बड़ा आश्चर्य आया करता है, कि हम से हमारा इकलोता बेटा, जोकि हमारा बड़ा आश्रय था, क्यों छीना गया। पड़ोस में तो अन्य मनुष्यों के बालकों को कुछ भी खेद नहीं हुआ है, उन का तो बाल भी बांका नहीं हुआ, वे तो ज्यों के त्यों ही हैं। ऐसे क्लेश के समय उन के मुखसे निकला करता है, कि इस जन्म में तो मैंने कोई ऐसा उग्रपाप नहीं किया, कि जिस का यह दण्ड मुझे मिलता है, ईश्वर के दरबार में न्याय नहीं होता है। ऐसा होने पर भी कर्मों की गति यथावत् न्याय पूर्वक होती है, यद्यपि इस का बोध ऐसे मनुष्यों को नहीं हो सकता है, कि जिन की अन्तर्दृष्टि न खुली हुई हो॥

जन्मकालसेपैदाहुवेरोग आकाशिक द्वितीय के विकारवान् होने से होते हैं। प्रकृति के नियमों को उलङ्घन करने और अन्य मनुष्यों को कष्ट पहुंचाने के बदले में यह दण्ड देह-धारी को जीवन भर भोगना पड़ता है। यह सर्व लीला धर्म्मराज के दूतों की कार्य्यवाही होती है, और केवल उन कुरूपताओं deformities) का स्थूल प्रकाश है, जो कि धर्म्मराज के दूतों को, देहधारी के आकाशिक द्वितीयके ढांचे में, उसके अपने दोषों और भूल चूकके कारण प्रकृति के नियमानुसार निर्माण करनी पड़ती हैं। इन दूतों ही की न्यायपूर्वक कार्य्यवाही से वंश-रोग (family disease) के पुनः प्रकट करने के संस्कारों का आन्तरीय प्रवाह आता है। आकाशिक द्वितीय का यथोचित ढांचा और रूप यह ही बनाते हैं। और फिर उसको ऐसे वंश की ओर ले जाते हैं, कि जिस में वह रोग, जो कि देह धारी को भोगना होता है, परंपरासे चला आता हो, और जिसकी प्रकृति

ऐसी हो कि जो उस रोग के बीज को अंकुरित करने और उसे फलीभूत करने में निरन्तर सहकारी रहे ॥

इसी प्रकार उत्तम शक्तियों के प्रकाश के वास्ते भी धर्मराज के दूतों को प्रबन्ध करना होता है। वे प्राणी के वास्ते आकाशिक द्वितीय का ऐसा ढांचा बनाते हैं कि जिस से स्थूल शरीर की नाड़ियां कोमल प्रकृति वाली बन सकें। और फिर इस ढांचे को वे ऐसे कुटम्ब की ओर ले जाते हैं, कि जिस के सभ्यों में उस उत्तम शक्ति का विशेष प्रकाश कई पीढ़ियों से चला आता हो। जैसे कि संगीत विषयक इन्द्रियों के निर्माण के वास्ते एक विशेष लक्षण वाले देहकी आवश्यकता होतीहै। उसके श्रवण और त्वचा इन्द्रियों अतीव कोमल प्रकृति वाले होने चाहियें। इस कोमलताकी प्राप्ति में तदानुसार पैतृक स्थूल द्रव्याधिकार (physical heredity) बड़ा सहकारी होता है॥

श्रेष्ठ पुस्तक लिखने और अच्छे २ व्याख्यानों द्वारा मनुष्य जाति की सेवा जो की जाती है,उसके बदले में भी योग्यफल धर्मराज की ओर से मिलता है। सेवक की मानसिक और अध्यात्मिक शक्तियों में बृद्धि हो जाती है॥

इस प्रकार मोटी रीति से हम समझ सक्ते हैं, कि कर्म्मों की गति कौन से नियमों द्वारा होती है और मनुष्य के भाग्य में धर्मराज के दूतों और देह धारी जीवात्मा की क्या क्या कार्य्यवाही होती है जीवात्मा सर्व द्रव्य (materials) को एकत्र करता है। धर्मराज के दूत और जीवात्मा दोनों इन द्रव्यों को अपने २ स्वभाव और धर्म्मानुसार काम में लाते हैं। जीवात्मा अपने स्वभाव को बनाता है और शनैः २ अपनी उन्नति करता है। धर्म्मराज के

दूत उस के वास्ते ऐसा ढांचा रचते हैं, कि जिसके कारणजीवात्मा की शक्तियां सीमाबद्ध रहें और उस के वास्ते योग्य बहिर् संबंधों को ढूंढते हैं और उन में अपने प्रबन्ध द्वारा प्रायः ऐसी समता लाते हैं, कि जिससे मनुष्यों की विरोधी इच्छायें होने पर भी कर्मों के भोग बिना चूक प्रकट हो सकें ॥

कर्म्म भोग का सहन।

जब पहिले पहिल किसी मनुष्य को कर्म्म रीति की सत्यता का बोध होता है तो उस को ऐसा भासा करता है, कि यदि सब कुछ कर्म्मों ही की लीला है, तो मनुष्य अतिदीन और परवश है, सर्बथा भाग्य (तकदीर) के आधीन है, अपनी स्वतन्त्रता से कोई कार्य्य करने की उस में कुछ सामर्थ्य नहीं है। पूर्व इसके कि इस बात का वर्णन हो कि मनुष्य किस विध कर्म रीति की सहायता से अपने भाग्य को अपने वश में कर सके, एक साधारण उदाहरण को क्षणक विचार करना उचित प्रतीत होता है, कि जिस से भली भान्ति यह जान लिया जावे, कि भाग्य (तकदीर) और मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा (तदबीर) शक्ति दोनों एकट्ठी किस विध क्रिया करती हैं, और परस्पर विरोधी नहीं होती हैं ॥

कल्पना करो कि एक मनुष्य कुछ एक स्वभाविक सामान्य मानसिक शक्तियां लेकर इस संसार में जन्म लेता है, प्रकृति उस की राजसिक है, उसके कई लक्षण शुभ और कई अशुभ हैं, आकाशिक द्वितीय (Etheric double) और स्थूल देह उसके सामान्य रीति से भले चङ्गे बने हुये हैं और अरोगी हैं परन्तु उनमें विशेष कांति वा शोभा नहीं है। यह सब बंधन उस के वास्ते रचे गये

और इन बन्धनों से घिरा हुआ हो कर उसे व्यवहार करना पड़ेगा युवावस्था को प्राप्त होने पर यह सब शक्तियां और राजसिक स्वभाव (जो कि उस का अधिभौतिक और अधिदैविक धन है) उस को मिल जाता है। इसी धन के साथ उसे संसार में यथाशक्ति लाभदायक बणिज करना होता है। इन बन्धनों में जकडे रहने के कारण विचार के बहुतसे शिखर (पहाड़) ऐसे हैं कि जिनके ऊपर वह निस्सन्देह नहीं चढ सकता। कई एक प्रत्यय (ज्ञान) ऐसे हैं कि जो उसकी सामर्थ्य से बाहर हैं, जिनमें उसकी बुद्धि प्रवेश नहीं कर सकती; बहुत से लोभ ऐसे आते हैं कि जिन में उसका राजसिक स्वभाव लम्पट हो जाता है और वह उनसे युद्ध भी करता है किन्तु फिर भी उस में फंस जाता है। बहुत से कार्य्य जो शूर बीरता और चतुराई से सिद्ध होते हैं उनको वह कर नहीं सक्ता। सच्च तो यह है कि जैसे वह अपनी देह को चन्द्रमा की न्याईं प्रकाशवान् और कांति वाला नहीं बनासकता, वैसे ही वह सोच विचारमें भी होनहार के तुल्य नहीं होसकता। मानों कि वह एक चक्रमें बन्धा हुआहै उसमेंसे निकलनेकेलिये चाहेवहतीव्रइच्छा ही क्यों न करे, तो भी उसमें से निकल नहीं सकता। इसके अतिरिक्त बहुत से कष्ट भी उसे आते हैं, इन से वह बच नहीं सक्ता, अवश्यमेव उसे सहने ही पड़ते हैं ॥

प्रत्येक मनुष्य के साथ ऐसी ही दशा वर्त्तती है। मनुष्य अपने गत संकल्पों, विपरीत वासनाओं, व्यर्थ समय खोने और मूढ़ता से लोभ मोह में फंसे रहने के कारण अपने बन्धन आप ही पैदा करता है। वह उन ही भ्रांतियों और चूकों से घिरा हुआ होता है, जो कभी पूर्वकाल में उस ने की होंगी, किन्तु जो उसे अब भूल

गई हैं। विचार दृष्टि से यदि देखा जावे तो इतना होने पर भी मनुष्य बन्धा हुआ नहीं है, यथार्थ मानुषीय सत्ता जो उस में विद्यमान् है, वह कभी हानि को प्राप्त नहीं हो सकती। जिस सत्ता ने उस गत अवस्था को रचा था, जो अब उसमें बन्ध रही है, वही सत्ता वर्त्तमान् समय में उस बन्धन रूप पिंजरे में रह कर भी ऐसे उपाय कर सकी है, कि जिस से उस का मुक्ति वाला भविष्यत् बनजावे। नहीं, यही नहीं, उसे ज्ञात रहे कि वह स्वयं मुक्त है और बन्धन रूप बेड़ियां जो उसके अङ्गों में पड़ी हुई हैं, पुरुषार्थ से कट सकती हैं। जितनी उस के ज्ञान में बृद्धि होगी उतना ही बन्धन रूपी बेड़ियों की भ्रान्ति उस को मालूम होती जावेगी। परन्तु एक साधारण मनुष्य के वास्ते, कि जिसका ज्ञान प्रज्वलित अग्नि की न्याईं नहीं किन्तु स्फुलिङ्ग की न्याईं उदय हुआ है, मुक्ति की पहली सीढ़ी यही होगी, कि यह निश्चय करे कि उस के बन्धन उस के अपने बनाये हुये हैं, किसी अन्य के बनाये हुये नहीं हैं; और फिर इस निश्चय से उन के सुधार में यत्न करे। निःसन्देह ऐसे दृढ़ निश्चय की सहायता से वह एक क्षण भर में होनहार पण्डित की न्याईं तो सोच विचार नहीं कर सकता किन्तु यथा सामर्थ्य पूर्ण रीति से चिन्ता का स्वभाव डालने से शनैः २ होनहार पण्डित भी बनजावेगा। भविष्यत् के वास्ते वह शक्ति एकत्र कर सकता है और इस में कुछ संशय नहीं कि यत्न करने से उस का मनोरथ सिद्ध होगा। सच्च है कि एक दम में तो वह अपने राजसिक स्वभाव और अवगुणों को त्याग नहीं कर सकता परन्तु यह तो कर सकता है, कि उन से युद्ध वा संग्राम करे और यदि हार भी जावे तो भी युद्ध न छोड़े, किन्तु इस निश्चय के साथ

लड़ता रहे कि उस की जीत होने वाली ही है। सच है कि उस में अधिभौतिक और अधिदैविक न्यूनतायें और कुरूपतायें तो बहुतसी हैं, किन्तु ज्यों२ वह अपने विचारों को बलवान् शुद्ध और सुन्दर और अपनी क्रियाओं को परोपकारी बनाता जाताहै, त्यों२ ही आगे के लिये अपने रूपों की लावण्यता और सुन्दरता को दृढ़ और परिपक्व करता जाता है। अपने बन्धन रूपी पिञ्जरेमें भी वह सदैव निजरूप मुक्तात्मा में स्थितहै और उन दीवारों को, जो उस ने अपने गिर्द बनाली हैं, गिरा सकता है। उसके अपने सिवाये उस का कोई बन्दी-कर्त्ता (Gaoler) नहीं है। वह अपनी मोक्ष की दृढ़ भावना कर सकता है और इसी दृढ़ भावना से उस को मोक्ष भी मिल जावेगा॥

एक विपता उस पर पड़ती है, और उस में वह एक मित्र को हाथ से खो बैठता है। उस से बड़ा भारी अपराध होगया है, ऐसी ही भावी थी, भूतकालमें उस ने अपने विचार में कोई अपराध किया था, वर्त्तमान् काल में कर्मका कर्त्ता बन कर वह कष्ट भोगता है। किन्तु उस का मित्र गुम नहीं हुआ, प्रेम द्वारा वह उसे अपने साथ संबद्ध रखसक्ताहै, भविष्यत्कालमें फिर उससे अवश्य मिलाप होगा। वर्त्तमानकालमें बहुतसे और संबंधीहैं कि जिनके वास्ते वह वही सेवा करसक्ताहै जोकि वह अपने प्रियमित्रके वास्ते करता। ऐसा करनेसे फिर वह अपने कर्त्तव्योंमें असावधान न होगा और इसलिये आगामी जन्मोंमें इसप्रकारकी हानिके बीज न बोवेगा। खुल्लम खुल्ला उसने अपराध कियाहै और उसका दण्ड भोगता है। किन्तु उस अपराध का विचार उसने भूतकाल में किया होगा वरना वह अब उसे वर्त्तमानकाल में कर्म द्वारा न कर सक्ता॥

अपने विचार द्वारा जो दण्ड उसने खरीदा है उसे वह धीरता के साथ सहन करेगा और वर्त्तमान काल में अपने विचार को ऐसा शुद्ध रखेगा कि जिस से उस का भविष्यत् लज्जा से रहित रहेगा। जहां पहिले अंधकार था अब वहां प्रकाश की एक किरण आती है और यह किरण उसे यह राग सुनाती है हे दुखिया लोगों, जानलो कि तुमको जो दुःख होता है वह तुम्हारा ही बनाया हुआ होता है। कोई दूसरा बलात्कार तुमको दुःख नहीं देसक्ता।

जो नीति उडने वाले बेडी समान दीखतीथी वह अब पक्षी के पक्षों के समान काम देती है और उसके द्वारा वह उन लोकों तक गमन कर सकता है जिनका उसे उस नीति के बोध बिना स्वप्न में ख्याल न आसक्ता था॥

भविष्यत्का निर्माण।

जीवों के समूह के समूह काल के मंद गति वाले प्रवाह के साथ साथ बहते हुये चलते हैं। संसार अपने चक्र के साथ उन को भी अपने साथ उठाय ले चलता है। जब एक पृथिवी से दूसरी पृथिवी पर जीवन की तरङ्ग पहुंचती है, तो ये भी उस ही के साथ चले जाते हैं। परन्तु महर्षियों के प्रसाद से सनातन धर्म का सिद्धान्त बारंबार डङ्का बजा कर दिखला रहा है, कि यदि चाहे तो मनुष्य प्रवाह के साथ बहने से रुक सकता है और संसार की मंद गति को अतिक्रमण (उलङ्घन) करने की विधि सीख सकता है॥

जब जिज्ञासु को इस नियम (कर्म्म) के अर्थ कुछ भी समझमें आजाते हैं और उसका निश्चय इस नियम की अटलता और अचल न्याय कार्यता में दृढ़ होजाता है, तो उसे अपने

सुधार का सोच विचार उपजता है। वह सचेत होकर अपनी उन्नति के उपायों को उत्साह के साथ साधने लगता हैं। अपने स्वभावको सूक्ष्म रीतिसे परीक्षा करने लगता है। निजदोषों पर दृष्टि करके उनको व्यवहार के निमित्त उचित रीति से बदलने लगता है, और सोच विचार के साथ मानसिक और धार्मिक गुणों को अपने में बढ़ाने लगताहै, निज सामर्थ्य को बढ़ाना, और निर्बलता को दूर करना आरंभ कर देता है, अपनी न्यूनताओं को पूर्ण करने और अशुद्ध और मैल की निवृत्तिकरने में तत्पर हो जाता है। जिसका ध्यान मनुष्य करता है निस्संदेह वह वैसा ही बन जाता है, इस सिद्धांत के ज्ञान को प्राप्त करके वह सावधानी के साथ अपने परमपवित्र और महान् लक्ष्यकी निरंतर चिंता करने लगता है। प्रतिदिन अपने व्यवहार को लक्ष्यके गुणों से शोभित करने में वह अभ्यास करता है। यह कार्य्य दृढ़ता और शांति के साथ करता है, न उस में शीघ्रता ही करता है और न ढील, क्योंकि वह जानता है कि वह अपना घर प्रकृति के नित्य और अटल नियमकी स्थिर नींव पर बनारहा है। उस नियमहीसे उस की प्रार्थना होती है और वही उस का पूज्य और आश्रय है। ऐसे मनुष्य को कभी किसी कार्य्य में असिद्धि प्राप्त नहीं होती है। न इस लोक में न परलोक में कोई ऐसी शक्ति है जो उस के मार्ग में विघ्नकारी होसके। सांसारिक जीवन में वह तजर्बे एकत्र करता है, जो कुछ उसके मार्ग में आता है उस से यथोचित काम लेता है, देवाचन देवायतन में जाकर उन सब तजर्बों का सार निकाल, उसे अपनी प्रकृति का अंश बना लेता है और इस प्रकार अपने भविष्यत् को सुधारता है॥

उक्त वृत्तान्त से पाठकों को ज्ञात होगया होगा कि जीवन के सच्चे सिद्धान्त के ज्ञानमात्र का ही कितना बड़ा महात्म्य है। यद्यपि यह सिद्धान्त अन्य पुरुषों की साक्षी पर माना जावे और निज अनुभव में पूरा २ न आवे, तो भी इस के केवल बोधमात्र से कैसे २ अद्भुत् लाभ होते हैं। जब मनुष्य कर्मों की गति को किंचित् मात्रभी समझ लेता है और उसे स्वीकार कर लेता है, तो वह तत्काल ही अपने सुधार को आरम्भ कर सक्ता है। स्वभाव रूपी घर के बनाने में एक २ ईंट को बड़े सोच विचार के साथ जमानेकी आवश्यकता उसे मालूम हो जाती है, क्योंकि अब उसे ऐसा घर बनाना है जो अनन्त काल तक चल सके। व्यर्थ दौड़ धूप और जल्दी में अपना कार्य्य नहीं बिगाड़ता। अपना सर्व-व्यवहार विधिपूर्वक करता है ऐसा नहीं कि आज एक उपाय करे, कल दूसरा और परसों कुछ भी न करे, खाली हाथ पर हाथ रख कर बैठ जावे। स्वभाव रूपी घर के चित्र (plan) को बड़ी चिन्ता और विचार के साथ बनाता है और फिर उस चित्रके अनुसार उस घर को चिनने लगता है, और अपने अमूल्य समय को किसी कार्य्य के निष्फल आरंभमें व्यर्थ नहीं खोता है। इस ही कारण मनुष्य उन्नति की ऊंची सीडियों पर जल्दी २ चढ़ जाता है और शूरवीर पुरुष ऐसी शीघ्रता से परम उद्धार को प्राप्त होता है कि जिस से लोगों को विस्मय (हैरानी) होता है॥

कर्मों का निर्माण।

जिस मनुष्य ने अपने भविष्यत् को सावधानी से बनाना आरम्भ कर दिया है, उसे अनुभव हो जावेगा, ज्यों ज्यों उस की बुद्धि सूक्ष्म होगी, कि उस में केवल इतनी ही सामर्थ्य

नहीं है, कि वह अपने स्वभाव का सुधार करले और अपने भाग्य को बढ़ालेवे, किन्तु इस से बढ़कर कार्य्य करने का बल उस में आगया है । उसे इस बात की प्रतीति होने लगती है, कि वह वास्तव में सर्व का केन्द्र स्थान है । वह चेतन, उद्योगी, और स्वयं निश्चयात्मक सत्ता है और जैसे कि वह अपनी क्रिया द्वारा अपनी हानि, लाभ कर सक्ता है, वैसे ही संसारमें भी अन्य मनुष्यों की हानि लाभ कर सक्ता है ॥ चिरकाल से वह अपना चलन व्यवहार उन धर्मों के अनुकूल रखता चला आया है, जो कि ऋषि मुनियों ने प्रति युग में मनुष्यजाति के उद्धार के निमित्त स्थापन किये हैं।अब वह इस बात को समझता है, कि यह धर्म्म प्रकृति माता के मुख्य नियमानुसार है, और नीति शास्त्र केवल इन नियमों का सम्बन्ध मनुष्यके आचार व्यवहार के साथ बतलाता है। वह देखता है, कि प्रतिदिन के व्यवहार में सुकर्म्म के द्वारा दुष्कर्म्म का नीच फल निर्बल अथवा नष्ट किया जा सकता है। एक मनुष्य उस के वास्ते नीच संकल्प भेजता है, यदि वह उसका उत्तर सजातीय नीच संकल्प से देवे, तो दोनों संकल्पों के रूप पानीकी दो बूंद की न्याईं साथ २ आकाश में भ्रमण करने लगते हैं और जैसे जल की बूंदें एकत्र होकर एक दूसरे के वेग को बढ़ाती हैं, उसी प्रकार सजातीय संकल्प रूप भी एक दूसरे के वेग को बढ़ाते हैं। किन्तु वह कदापि नीच संकल्प का उत्तर नीच संकल्प से नहीं देता, क्योंकि वह कर्म्म गति का ज्ञाता है । भ्रष्ट और दुराशय वाले संकल्पों का उत्तर प्रेम और दया से भरे हुए संकल्पों से देकर, उन के हानिकारक रूपों को छिन्न भिन्न कर देता है । यह रूप छिन्न भिन्न होने

के पश्चात् आकाशिक जीवन सत्ता (elemental life) से सचेत नहीं रह सकता। रूप से अलग होकर यह सत्ता फिर आकाश में लीन होजाती है और रूप नाश को प्राप्त होजाता है। इस प्रकार संकल्प रूपों की दुर्गति अथवा उन का हानिकारक भाव निवृत्त होजाता है। निस्संदेह प्रीति और प्रेम द्वारा वैर और द्रोहादि के नीच भाव सब क्षय हो जाते हैं। गगनमण्डल में असत्य और अज्ञान से भरे हुए और भ्रान्ति को उत्पन्न करने वाले अनन्त संकल्परूप भ्रमण करते हैं। ज्ञानवान् पुरुष अपने सत्य और ज्ञान-मय संकल्प भेजकर उनका नाश करते हैं। शौच से अशौच का और दान से स्वार्थता का नाश करते हैं। ज्यों २ ज्ञान में वृद्धि होती है त्यों २ ही यही क्रिया साक्षात् और सार्थिक बनती जाती है। अर्थ सिद्धि के निमित्त निश्चय के साथ संकल्प उत्पन्न किये जाते हैं और बलवान् इच्छा शक्ति की ताकत उन में फूंकी जाती है॥ इन के द्वारा घोर दुष्कर्म्म उपजते ही नष्ट होजाते हैं और उनका कोई अंश भी गगनमण्डल में शेष नहीं रहता है, कि जिस से हानि कारक बान को चलाने वाले पापी मनुष्य और उस सज्जन के मध्य में कि जिस ने क्षमा द्वारा इस बान को भस्म कर दिया है, कोई कर्म्मरूपी बन्धन रहे॥ इसी नियम को ज़ान कर प्राचीन ऋषि मुनि उपदेश दिया करते थे, कि अधर्म्म को धर्म्म द्वारा जीत सकते हैं, अन्यथा नहीं। उनका कथन था कि शत्रु के साथ मित्रता और प्रेमभाव करने से शत्रु का वैरभाव दूर हो जाता है। आज कल का व्यवहार इस के विपरीत है। प्रायः व्याख्यानों में श्रोताओं को यह ही समझाया जाता है, कि थप्पड़ का उत्तर थप्पड़ से और गाली का उत्तर गाली से ही देना

उचित है। आधुनिक धर्म्म की मर्य्यादा चलाने वाले क्या करें उनका कुछ दोष नहींहै, दिव्य-दृष्टि से हीन, अज्ञान और मूर्खता में लंपट होने के कारण, वे प्रकृति के नियमों को यथार्थ रीति से नहीं जान सकते। चर्मदृष्टि इसमें उनको सहायता नहीं देसक्ती प्राचीन ऋषि मुनि दिव्यचक्षु द्वारा इन नियमों को साक्षात् देख कर उपदेश किया करते थे। लोग अपने धर्म्म पर आरूढ़ होते थे, इस से देश का उद्धार होता था। जो लोग इन गूढ़ उपदेशों की वास्तविक और यथार्थ युक्तियों को पूर्णरीति से तो समझ नहीं सक्के किन्तु श्रद्धा पूर्वक अपना व्यवहार उन के अनुकूल रखते हैं, वे भी बड़ा उपकार करते हैं। वे कर्मों के उस भारी बोझ को हलका बनाते हैं जो कि अत्यन्त ही भारी बन जाता, यदि वे भी द्रोह का उत्तर द्रोह में देते। ज्ञानवान् पुरुष ऋषियों के बचनों के सार को समझ कर नीच संकल्प रूपों को अपने ज्ञान से नाश करते हैं। पाप के बीज को निष्फल बना कर आगामी दुःख संग्रह को निवृत्त करते हैं॥

पतित प्रवाह के साथ २ चलने वाले साधारण मनुष्योंकी भूमिका उलंघन करके जब मनुष्य विशेष पद को प्राप्त करताहै,तब उसकी सामर्थ्य केवल इतनी ही न होगी, कि अपने स्वभाव को सुधार सके,अपने से संसर्ग में आनेवाले संकल्प रूपों पर अपना भाव डाल कर उन को संसार केउद्धारके निमित्त परोपकारी बना सकें, किन्तु इस से बढ़ कर उस में एक और शक्ति आजाती है। अब वह भूतकाल के वृतान्त को जानने लगता है, अपने ज्ञान बल से वर्त्तमानकाल की दशा यथार्थ रीति से जांच सक्ता है, और कर्मों के फलों का खोज बहुत दूरतक लगा सक्ताहै। सचेत

रीति से अपनी शक्ति काम में लाकर वह भविष्यत् को बहुत कुछ बदल सक्ता है। वह अपनी क्रियाशक्ति को उन शक्तियों के प्रतिकूल काममें लाता है, कि जिनकी उद्योगता भूतकाल में, आरंभ हो चुकी है। अपने ज्ञान बल से अर्थसिद्धि के निमित्त प्रकृति के नियमों को वह ऐसे निश्चय के साथ वर्त्तने लगता है, कि जिस निश्चय के साथ पश्चिम देश में पदार्थ विद्या के वेत्ता प्रकृति के नियमों को वर्तते हैं॥

इस विषय के तत्व का अनुभव करने के वास्ते उचित प्रतीत होता है, कि एक जड़ पदार्थ की संचाल गति को विचारा जावे, किसी शक्ति के बल से हिल कर जब एक पदार्थ भ्रमण करने लगता है, तो उस की गति नियत वेग से होगी। यदि इस पदार्थ पर एक और शक्ति लगाई जावे, कि जिस की दशा और वेग कुछ और ही हैं, तो वह पदार्थ न तो पहिले मार्ग पर चलेगा, और न दूसरी शक्ति के मार्ग पर; किन्तु उसकी दशा उन दोनों दिशाओं के बीच में होगी, और वेग की तीव्रता भी बदल जावेगी। इस में शक्ति की कुछ हानि नहीं हुई है; किन्तु एक शक्ति का कुछ अंश दूसरी शक्ति की क्रियाको थोड़ासा निवारण करने में खर्च होगया है। दोनों शक्तियों की क्रियाओं का जो फल है, उसही के वेग और दशा के अनुसार पदार्थ की संचाल गति वर्तेगी। साएंसवेत्ता गणित द्वारा ठीक २ मालूम कर सकता है, कि किसी भ्रमते हुए पदार्थ पर किस दिशा में, और कितने बल से टक्कर लगाई जावे ताकि उस की संचाल गति हमारी इच्छानुसार होजावे। और यदि भ्रमता हुआ पदार्थ उस की पकड़ से बाहर भी हो अर्थात् उस से दूर भी हो, तब भी वह उस की ओर एक दूसरे पदार्थ को

विशेष दशा में विशेष वेग के साथ फेंककर उसे ऐसी टक्कर दे सकता है, कि जिस से वह अपने पहिले मार्ग से हट कर इच्छित मार्ग पर भ्रमण करने लगे । इस से प्रकृति के नियमों में कुछ हानि नहीं पड़ी, उन के विरुद्ध कुछ क्रिया नहीं हुई । केवल नियम का ज्ञान होने से अर्थ की सिद्धि की गई है, मनुष्य के मनोरथ की सिद्धि करने के निमित्त प्रकृति की शक्तियों को काम में लाया गया है । इसही निश्चय को यदि कर्म्मगति में लगाया जावे, तो सहज ही से समझ में आजावेगा, कि ज्ञान-बल से कर्मों की गति को मोड़ने में कर्म्म व्यवस्था का कोई नियम किञ्चित् मात्र भी उलंघन नहीं होता है । उस की अटलता और सत्यता ज्यों की त्यों बनी रहती है, कर्म्म गति को मोड़ने में हम कार्म्मिक शक्ति को ही काम में लाते हैं । प्रकृति के नियमों की आज्ञा-पालन से हम प्रकृति माता को जय करते हैं ॥

अभ्यास करते २ जिज्ञासु इस भूमिका तक पहुंच जाता है, जहां से व्यतीत गति पर दृष्टि डालने से उस को अनुभव होता है, कि भूत क्रियाओं के प्रवाहका ढलाव विशेषता से किस दिशा में और किस वेग से हो रहा है, और उन से कौन २ से अनिष्ट फलों की प्राप्ति होनेवाली है । ऐसा होने पर प्रवाह के प्रतिपक्ष निज शक्ति को लगा कर उस से उत्पन्न होने वाली घटना को वह बदल सकता है । और यह बदली हुई घटना उन सर्व शक्तियों के फलानुसार होगी जो कि उस के उत्पन्न करने और फलीभूत करने में काम आई हैं ॥ भविष्यत् रचनाओं को इस प्रकार पलटने के वास्ते विशेष ज्ञान का होना अत्यावश्यक है, केवल कर्मों की व्यतीत गति को देख लेना, और वर्त्तमान समय

के साथ उन के सम्बन्धका खोज निकाल लेनाही काफ़ी नहीं है। जब विशेष ज्ञान की उपलब्धि होती है, तब उस के बल से गणित द्वारा वह ठीक२ मालूम कर सकता है कि उस की अपनी शक्ति का क्या असर होगा, भूत कर्मों का प्रवाह कितना और किधर पलटा खावेगा और पलटा खाकर इस प्रवाह से क्या २ फल प्रगट होंगे और उनसे क्या २ हानि लाभ होंगे॥ जब ऐसी सामर्थ्य हो जाती है, तब मनुष्य अपने कर्म्म प्रवाह में नवीन शुभ शक्तियों को डाल कर दुष्कर्मों के फलों को निर्बल अथवा निष्फल बना सकताहै। और उनसे नई२ रचनायें रचसक्ता है। यही यथार्थ रसायनहै। जिनको इसकीप्राप्ति हुई है उनको लोष्ठ और स्वर्णसमान होजाते हैं। उनकी सर्वतृष्णायें निवृत्त होजातीहैं। अत एव सबको यही उचित है कि उस ज्ञानरूपी पारस को ढूंढें किजिससे उनका पापरूपी लोहा स्वर्ण रूपी पुण्यमें पलटजावे॥

भूतकालकी क्रियायें अक्रियायें तो नहीं होसकतीं, उनका नाश तो नहीं कर सक्ते किन्तु उनका जितना फल भविष्यत्में होनेवाला शेष रहता है, उसे बहुत कुछ बदल सक्ते हैं। इतनाही नहीं, नवीन सुकर्म्म द्वारा उन कर्म्मोंसे उनही के विपरीत फलों की उत्पत्तिभी होसक्ती है। इन सब बातोंमें प्रकृति का कोई नियम उलंघन नहीं होता है। साधकजन अपने ज्ञान बल द्वारा प्रकृति की नीतिको व्यवहार में वर्त्तते हैं और उससे उन्नति को प्राप्त होते हैं। उन का क्रियायें ऐसीही निश्चयात्मक होती हैं, जैसी कि पदार्थ वेत्ताओं की, जो एक शक्ति के बल को दूसरी शक्ति के बल से रोक कर समता उत्पन्न करते हैं। यद्यपि वे शक्ति को तो किञ्चित् मात्रभी नाश वा अविद्यमान नहीं कर सक्ते, किन्तु नवीन शक्तियों को

लगा कर, उनके वेग और प्रवाहों की गणना करके, पदार्थ की संचाल गति को अपनी इच्छानुसार पलट सक्ते हैं। इस प्रकार कर्म्मों की गति को मध्यम वा तीव्र भी बना सक्ते हैं। कर्म्मों की लीला उन सम्बन्धों से बदल जाती है, कि जिन के आश्रय वे परिपक्व होकर फली भूत होते हैं॥

चूंकि इस विषय का बोध अत्यावश्यक और फलदायक है, इसवास्ते इसको एक और नये ढंग पर वर्णन करना अयोग्य न होगा। जितना ज्ञान बढ़ता है, उतना ही मनुष्य व्यतीत क्रिया के फन्देसे सुगमताके साथ छुट सक्ता है। कारण रूपी कर्म्म जो अपने फलीभूत भावको प्राप्त होरहे हैं सब के सब उस जिज्ञासु की दृष्टि में आते हैं जो कि मुक्ति के समीप पहुंच रहा है। जब दृष्टि उलटा कर पिछले जन्मों को देखने से सैंकड़ों जन्मों के वृत्तांत (कि जिन में उसने शनैः २ उन्नति की थी) उसके सम्मुख होते हैं, तब उसे अनुभव होता है कि किन २ कारणों से किन २ कर्म्म बन्धनों को उसने उत्पन्न किया था, उनमें कौन २ से तो भुगते जा चुके हैं, किन२ के भोगका समय अब आरहा है, और भविष्यत् में क्या होने वाला है। कारण कार्य्य रूपी कर्म्म दोनों उसे साक्षात् दृश्य आते हैं॥

जैसे स्थूल प्रकृति की नीति का साधारण ज्ञान होने से, खास २ अनागत घटनाओं का वृत्तान्त और उनकी विधि पहिले से ही मालूम होजाती हैं, तैसे ही साधक पुरुष को भी अपने गत कर्म्मों और उन की भाव्यगति का पता लग जाता है॥

जब कारणों का ज्ञान होजाता है और उनकी गति दृष्टि गोचर होजाती है तब उन के कार्य्यों को नवीन शक्ति द्वारा नि-

सफल बनाना सम्भव है। नीति के अनुसार वर्त्तने, उसके अटल और नित्य समान स्वभाव पर निश्चय रखने और उद्योगित शक्तिओं के वेग की गणना करने से उन से जैसा फल चाहें वैसा पैदा कर सक्ते हैं। यह तो केवल गणित विद्या की बात है, इस में कुछ विशेष गुह्य भेद नहीं है। एक मनुष्य घृणा वा द्वेष भाव की थरथराहटें, मानों पहिले पैदा कर चुका है; यदि वह चाहे तो सावधान होकर इन थरथराहटों को शांत कर सक्ता है। उन के प्रतिकूल प्रेम और प्रीति की थरथराहटें उत्पन्न करके वर्त्तमान वा भविष्यत् में उन से उपजनेवाले फल को क्षय कर सक्ता है॥

पहिले शब्द की एक लहर को लेकर और फिर दूसरी लहरको लेकर और फिर दोनों की गति को एक दूसरेके पीछे इस तरह कर कर, कि जिस से एक लहर के घन अंश की थरथराहट दूसरी लहर के अघन अंश की थरथराहटों के साथ संयुक्त हो जावें, देखो कि कैसी सोहावनी शान्ति पैदा होजाती है। कोलाहलों के मिलाप में से जिस प्रकार शांति उत्पन्न हो सकती है वैसे ही ज्ञान और इच्छा शक्ति के बल से प्रेम और द्वेष भावों की थरथराहटों को परस्पर मिला कर उन से समता पैदा की जा सक्ती है, और कर्म्म पाश भस्म की जासक्ती है। ऐसी समता करने से मनुष्य उस कर्म्म से मुक्त होजाता है, क्योंकि समता मुक्ति का दूसरा नाम है॥

ऐसा ज्ञान प्रायः मनुष्यों की समझ से बाहर है। तत्वज्ञान से लाभ उठाने के निमित्त जो कुछ उन से बन सक्ता है वह यह है, कि इस विषय में निपुण पुरुषों की सम्मति लेवें और संसार के बडे २ धार्मिक आचार्य्यों के वचनों को सोचें। इन वचनों के अनु-

सार कि जिन की साक्षी उन को अपने अनुभव से मिले (अगर्चि वह उन को विधि सहित पूर्ण रीति से तो नहीं समझें) वर्त्तने से वे वैसी क्रियायें उत्पन्न कर सक्ते हैं जैसे कि सोचे समझे हुये ज्ञान बल की सहायता से हो सक्ती हैं। इस प्रकार आचार्य्य भक्ति और उस की आज्ञापालन द्वारा जिज्ञासु को मुक्ति का वही पद मिल जाता है जोकि ज्ञान प्राप्ति से मिलता है॥

इन नियमों को सर्व सम्बन्धों सहित विचारने से जिज्ञासु को बोध होने लगेगा, कि किस प्रकार मनुष्य अविद्या के फन्दे में फंसकर बेवश होरहा है, और मानसिक उन्नति में ज्ञान से कितने बड़े २ लाभ होते हैं। मनुष्य प्रवृत्ति मार्ग में लग जाते हैं और इधर उधर धक्के खाते हैं क्योंकि उन को ज्ञान नहीं होता है। वे पराधीन और असमर्थ होते हैं क्योंकि चक्षु हीन हैं। साधारण मनुष्यों की अपेक्षा जो अधिक वेगके साथ अपने मार्गकी अन्तिम अवस्था तक पहुंचना चाहते हैं, और जो सुस्त मनुष्योंके समूहों को ऐसाही पीछे छोड़ना चाहते हैं जैसे कि घुड़दौड़ में दौडनेवाला मनुष्य थके हुए और वृद्ध घोड़ों को त्याग देता है,उन्हें ज्ञान और प्रेम, अथवा विज्ञान और ईश्वर भक्ति की आवश्यकता होती है। उन्हें कर्म्म बन्धन रूपी जञ्जीर की कड़ियों को शनैः २ घिसाकर तोड़ने की आवश्यकता नहीं है,वे शीघ्रता से उन कड़ियोंको रेतकर उड़ासक्ते हैं और उनके बन्धनमें से पूर्णरीतिसे निकल सकते हैं॥

कर्म्म क्षय।

कर्म्म ही हमारे पुनर्जन्म का कारण है, यही हम को जन्म और मृत्यु रूपी चक्र के साथ बांधता है। शुभ कर्म वैसे ही बलसे हम को पीछे खैंचते हैं, जैसे कि अशुभ कर्म। पुण्य कर्मों की

पाशाओं से गुन्धा हुआ जाल वैसी ही स्थिरता और दृढ़ता से हमको बांधता है, जैसे कि पापों से बना हुआ जाल बांधता है।

अब प्रश्न यह है, कि इस जाल की बनावट का अंत किस विध होगा, इसके फंदे क्योंकर कटेंगे। जब तक देह में निवास होता है, तबतक संकल्प (thougts) और भावना (feelings) देही में अवश्य उपजती हैं, इन से बचा नहीं जा सकता, और इन ही से कर्म बन्धन सदा उपजते रहते हैं और वृद्धि को प्राप्त होते हैं। संसारमें रहना, उसके सर्व व्यवहार करना और फिर कर्म बंधन में न फंसना, दुस्तर सा प्रतीत होता है। साधारण बुद्धि से तो यह विपरीत ही सा भासता है, किन्तु ऐसा नहीं है। इसके उत्तर में श्रीमद्भगवद्गीता का महान् उपदेश है, जो कि शूरवीर राजपुत्र को समझाया गया था। यह उपदेश न तो किसी वानप्रस्थीको दिया गया था, और न ब्रह्मचारी विद्यार्थी को; किन्तु एक ऐसे योधा को जोकि विजय पाने का यत्न कर रहा था; यह उपदेश एक ऐसे राजपुत्रको दिया गया था, जोकि गृहस्थी था और अपने राजधर्मों में सर्वथा तत्पर था॥

कर्म बन्धन क्रियासे कदाचित् नहीं उपजते। इनका कारण तो वासना है। क्रिया बन्धन रूप नहीं होती है, किन्तु उसके फल की आसक्ति महान् बन्धन रूप है। प्रायः क्रियायें फल भोग की अभिलाषा से की जाती हैं, फल प्राप्ति की इच्छा से आचरण स्वीकार किये जाते हैं; जीव आशायुक्त होता है, और प्रकृति (Nature) को नीति के अनुसार उसका प्रत्युत्तर देना पड़ता है, जीव याचना करता है, प्रकृति को उसे अवश्यमेव पूर्ण करना होता है। प्रत्येक कारणके साथ उसका कार्य सम्बन्धित रहता है, क्रिया

और उसका फल कभी भिन्न २ नहीं हो सकता, क्रिया फल के साथ सम्बन्धित है। इनका परस्पर सम्बन्ध आशा रूप पाश के द्वारा होता है। जिस प्रकार सूत्र-माला के मनकों को एकत्र और परस्पर मिलाकर रखता है, ठीक उसी प्रकार आशा रूपी सूत्र भी कर्मों और उनके फलों को संयुक्त रखता है। यदि यह सूत्र भस्म कर दिया जावे, तो संबंध क्षीण होजावेगा, और जब हृदय की सर्व ग्रंथियां क्षय होजावेंगी तो जीव मुक्त होगा। कर्म फिर उसे कदापि स्पर्श नहीं कर सकता, कर्म फिर उसे कदापि बांध नहीं सकता, कारण कार्य रूपी चक्र घूमता भी रहे, किन्तु जीव अब जीवन मुक्त हो गया है, इस से वह बन्ध नहीं सकता। अर्जुन को भगवान् उपदेश देते हैं :-

तस्मादसक्तः सततंकार्यंकर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः।३।१९

भगवान् कहते हैं, कि हे अर्जुन "इस लिये संग रहित हो निरन्तर अपने करने के योग्य कर्म्मोंकोकर,विषयों में असक्त पुरुष कर्म को करता हुआ निश्चय परमपद को पाता है॥

योग साधने के वास्ते मनुष्य को उचित है, कि प्रत्येक कार्य्य को कर्तव्य धर्म्म समझ कर नीति के अनुसार विधि पूर्वक करे। क्रिया चाहे किसी प्रकार की हो (अधिभौतिक, अधिदैविक, वा अध्यात्मिक) पर नीति के अनुसार उसका अनुष्ठान करने में मनुष्य का उद्देश्य यह होता है, कि वह जगतोद्धार में दैविक इच्छा (Divine will) के अनुचारी और सहकारी शक्ति बन जावे; और इसी वास्ते वह अपनी प्रत्येक उद्योग्यतामें दैविक इच्छाकी आज्ञा

पूर्ण रीति से पालन करता है। उसकी सर्व क्रियायें यज्ञ रूप बन जाती हैं, उनका अनुष्ठान नीति चक्र के भ्रमण निमित्त होता है, न कि इस निमित्त कि उन से फलों की प्राप्ति हो। कर्तव्य धर्म्म जान कर क्रिया की जाती है, और उसका फल मनुष्य जाति के हितार्थ प्रसन्नता पूर्वक त्याग दिया जाता है। क्रिया के साथ कर्त्ता का कोई शेष सम्बन्ध नहीं रहता। क्रिया नीति के अर्पण की गई है, नीति ही उसके फलको परोपकारमें लगाती है। श्रीमद्भगवद्गीता के चौथे अध्याय में यह विषय इस प्रकार वर्णन किया गया है :-

यस्य सर्वे समारम्भः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्म्माणंतमाहुःपण्डितं बुधाः१९
त्यक्त्वा कर्म्मफला संङ्ग नित्यतृप्तोनिराश्रयः
कर्म्मण्यपि प्रवृत्तोऽपि नैवकिञ्चित् करोतिसः
निराशीर्यत चित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्२१
यदृच्छा लाभ संतुष्टो द्वंद्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निवध्यते २२
गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थित चेतसः।
यज्ञाया चरतः कर्म्मसमग्रं प्रविलीयते ॥ २३।

अर्थ-जिसके सब उद्योग कामना और संकल्प से रहित हैं, और सर्व कर्म्म ज्ञान रूप अग्नि से भस्म हो गये हैं, उसको ज्ञानी लो गपण्डित कहते हैं॥ १९॥

कर्म्म के फल में आसक्ति को छोड़ कर, जो सर्वदा तृप्ति को प्राप्त आश्रय रहित है वह कर्म्म में प्रवृत हूआ भी कुछ नहीं करता ॥ २० ॥

सब कामनाओं से रहित, एकाग्रचित, बन्धन के कारणों को छोड़ जो केवल शरीर स्थिति के अर्थ कर्म्म करता है, वह पाप का भागी नहीं होता ॥ २१ ॥

अपने आप जो वस्तु मिले उसी में संतुष्ट, शीतोष्ण आदि द्वन्द्व पदार्थों के क्लेश को न मानने हारा, मत्सर से रहित, अर्थ की सिद्धि और असिद्धि में एक सा रहने वाला पुरुष कर्म करके भी बन्धन को नहीं पाता ॥ २२ ॥

आसक्ति शून्य राग और द्वेष से मुक्त, ज्ञान निष्ठ, यज्ञ के निमित्त कर्म करते हुए पुरुषका सम्पूर्णकर्म विलय होजाता है ॥२३

शरीर और मन अपने २ स्वभाविक व्यवहार करते हैं, शरीर से सर्व स्थूल क्रियायें और मन से मानसिक क्रियायें की जाती हैं, किन्तु आत्मा ज्यों का त्यों अपने आपमें शान्त और अखेद्य रहता है। और काल की बेड़ियों के बनाने में अपनी सत्ता नहीं देता। सत्कर्म्म का कभी त्याग नहीं किया जाता है, किन्तु श्रद्धा पूर्वक यथा सामर्थ्य पूर्ण किया जाता है। कर्म्म फल के त्याग वा उस में आसक्त न रहने का यह अभिप्राय नहीं है, कि कर्मों के अनुष्ठानमें बेपरवाही वा आलस्य किया जावे। जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय३, श्लोक २५ वा २६में लिखा है:-

सक्ताः कर्मण्य विद्वांसोयथा कुर्वन्ति भारत,

कुर्याद्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् २५

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्म सङ्गिनाम्।
योजयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्॥२६

अर्थ–हे भारत, मूर्खजन कर्म के विषय में आसक्त होकर जैसा उस का आचरण करते हैं, वैसा विवेकीजन कर्म में निरासक्त होकर लोकमर्यादा की इच्छा से कर्म्म का आचरण करें २५

ज्ञाननिष्ठ, कर्म करने वाले अज्ञानियों की मति को चञ्चल न करे। किन्तु सावधानहो,सबकर्म्मों को करता हुआ उनसेकर्मही करावे॥२६॥

जो मनुष्य क्रिया में अकर्तृतत्व भाव को निभा सक्ता है अर्थात् कर्म में अकर्म को देख सकता है, या यों कहो कि कर्म के कर्तृतत्व भाव को अपने अहं में नहीं फुरने देता है, वह कर्मों को क्षय करने वाला गुप्त मन्त्र जानता है। वह संचित कर्मों को ज्ञान बल से क्षय करता है, और क्रियमाण कर्मों को भक्ति के बल से भस्म कर डालता है। इसही अवस्था को प्राप्त करके वह ऐसे मन्दिर (वा पद) में प्रवेश करता है, कि जिस में से फिर पुनरावृत्ति नहीं होती। इस मंदिर में से निकल कर प्राणी बारं बार मृत्यु लोक में आता है, परन्तु एक समय ऐसा भी आता है, कि जब यह आवागमन बन्द होजाताहै, और प्राणी ऐसा अचल और स्थिर होजाताहै, कि मानो मन्दिर का स्थम्भ ही है। वह मन्दिर जीवन मुक्तों का लोकहै,और उसमें वही प्रवेशकर सकतेहैं, जोकि किसी पदार्थके साथ अपनी स्वार्थताके निमित्त बंधायमान नहीं हैं॥

इस लिये कर्मों के फन्दों से बचने के लिये यह अत्यावश्यक है, कि वासना की ग्रंथियों को तोड़ा जावे। जितनी वासनायें

मलिन अहंकार (personality) और परिछिन्न शुद्ध अहंकार (individuality) में उपजती हैं, वे सब त्यागने योग्य हैं। अब यह विचार करना है, कि इन ग्रंथियों का छेदन किस प्रकार आरम्भ किया जावे॥ इस विषय में प्रायः मनुष्यों को भ्रान्ति हुआ करती है सामान्यतासे लोग समझ लेते हैं, कि हृदय के छेद करने से उसकी ग्रंथियां भी नाश होजाती हैं, ऐसा कदापि नहीं होता है। पत्थर वा धातु के टुकड़ों के समान जड़ और अचेतन बनने का यत्न करने से कभी वासना का क्षय नहीं होता है। मुमुक्षु की प्रकृति में प्रति दिन कोमलता अधिक होती रहती है, घटती कभी नहीं ज्यों २ वह भक्ति के द्वार के निकट पहुंचता जाता है, त्यों २ ही उसके हृदय में कोमलता बढ़ती जाती है, न कि क्रूरता, क्योंकि पूर्ण शिष्य वही होता है, जोकि अपने गुरु के समान बाह्य जगत् की सर्व तरंगों को और उन के वेगों को यथावत् जान सके; जो हरएक क्रिया के भाव को अनुभव करके, उस का प्रत्युत्तर देसके, और जो स्वयं वासना शून्य होने के कारण प्रत्येक वस्तु सर्व को दे सके ऐसा मनुष्य कर्मों से बन्धायमान् नहीं होता है, वह अपने बन्धन के निमित्त बेड़ियां नहीं बनाता। ज्यों २ मुमुक्षु देव शक्ति के प्रवाह को संसार में फैलाने वाली प्रणाली बनाता है, तैसे ही उसकी प्रार्थना इस से इतर कुछ नहीं रहती कि, वह एक ऐसी सरिता होजावे कि जिस का प्रदेश वा सतह (bed of a channel) चौड़ा हो जिससे उसमें जीवन शक्तिका प्रवाह विना रुकावट चला करे, केवल एक यही इच्छा उस को होती है, कि वह योग्य पात्र बने, ताकि उसकी अज्ञानता के कारण उस के द्वारा बहने वाली दैविकशक्ति का प्रवाह मलिन न होजावे। क्रियायें करने में सेवा

के इतर उसका और कोई प्रयोजन नहीं रहता । मुमुक्षुजनों का जीवन चरित्र ऐसा हुआ करता है, कि जिस में वे बन्धनरूपी बेड़ियों को काट डालते हैं, किन्तु एक बन्धन रहता है, जोकि भी नहीं टूटता । यह बंधन द्वैत सत्तारूप है, जोकि वास्तव में कोई बन्ध नहीं है, क्योंकि अद्वैतभाव लक्षण से युक्त है । यह एक ऐसा बन्धन है जो एक को सर्व के साथ और व्यष्टि को समष्टि के साथ, शिष्य को गुरु के साथ और गुरु को शिष्य के साथ, एकरूप करदेताहै। यह बंधन दैविक-जीवनसत्तारूपहै, जो कि हमको सदा ऊर्ध्व ही ऊर्ध्व खैंचता रहता है, और जन्म मरण के चक्र में नहीं पड़ने देता । पहिले तो हम वासना से वशीभूत होकर भोगों के निमित्त संसार की ओर लौट कर आते हैं, और फिर हमें संसार में श्रेष्ठ और शुभ इच्छाओं की पूर्णता अर्थात् अध्यात्मोन्नति, आत्मज्ञान और पराभक्ति की सिद्धि के निमित्त आना पड़ता है । जब सर्वसिद्धि हो जाती हैं, तो फिर कौनसी वस्तु रहती है, जो कि महात्माओं को मनुष्य लोकके साथ बांध रखती है ॥

कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जोकि संसार उन्हें दे सकता है । पृथिवी पर कोई ऐसा ज्ञान कहीं है, जोकि उन को प्राप्त न हो, कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो उन के वश में न हो, और जिसे वे वर्तते न हों, कोई ऐसी भुक्ति नहीं है, जोकि उनके जीवन चरित्रों को अधिक शोभा दे सके। कोई ऐसा पदार्थ नहीं है, जिस का लालच उन्हें संसार में फिर जन्म दे सके । परन्तु फिर भी वे जन्म लेते हैं, क्योंकि दैविक प्रेरणा जो अभ्यन्तर से होती है, न कि बाह्य से, उन्हें संसार में मनुष्य जाति के उद्धार के वास्ते भेजती

है। यदि यह प्रेरणा न होती, तो वह संसार को सदैव के लिये त्याग देते। लोकोद्धार अभिप्राय से बारं बार युगप्रति युग चोला धारकरके प्रगट होते हैं, और मनुष्य जाति को परम आनन्द और शान्ति के स्रोतस् तक पहुंचने का मार्ग दिखलाते हैं॥

कुलकर्म समूह
(Collective karma.)

प्राणियों के एकत्र होने और कुटम्ब, वर्ग, जाति, और वंश बनाने से, कर्म गति के निर्णयमें एक और नई कठिनता पड़जाती है। कर्मों के इस नये समूह ही के कारण देश तथा जाति में कई ऐसी विपत्तियां (accidents) आती हैं, कि जिन के द्वारा धर्म्मराज की आज्ञानुसार कर्मों का लेखा चुकता है। यद्यपि मनुष्य परकोई ऐसी आपत्ति नहीं आ सकती, जो उस के अपने प्रारब्ध कर्मों में न हों, फिर भी कई एक सञ्चित बुरे कर्मों को (कि जिनका भोग उसे वर्त्तमान जन्म में साधारण रीति से प्राप्त न होता हो) भोग डालने का अवसर भौंचालादि देशीय तथा जातीय विपत्तियों के द्वारा दिया जाता है। कर्मों की इस आसाधारण गतिके विषयमें प्रत्यक्ष निश्चय रूप से तो कुछ वर्णन नहीं किया जा सक्ता किन्तु अनुमानसे ऐसा प्रतीत होता है, कि जब तक मनुष्य की भावी में मृत्यु न हो, तब तक उस का अकस्मात् देह से वियोग नहीं हो सकता, चाहे कैसे ही घोर उत्पात् में उसे क्यों न फैंक दियाजावे। महा अनर्थ रूपी काल ध्वंस के बीच में, कि जिससे उसके पड़ोसी उपरातली मरे चले जाते हैं, दैवयोग से उस की रक्षा ही होती

रहेगी,और वह सर्व संकटोंमेंसे कुशल के साथ ज्योंका त्यों निकल आवेगा। यदि उसे काल का ऋण देना है और वह देशीय अथवा जातीय कर्मों द्वारा किसी उत्पात् के स्थान में खिंच कर आगया है तो अवश्य देह से उस का वियोग हो जावेगा, यद्यपि वर्त्तमान देह के लिङ्ग शरीर में तो ऐसी विपदा का भोग निर्माणित नहीं था। ऐसी दशा में उस की रक्षा के निमित्त कोई बड़ा यत्न दैवयोग से न होगा। हां मृत्युके पश्चात् देवायतन (स्वर्ग) में उसकी विशेष रक्षा की जावेगी, ताकि अकाल मृत्यु से उसे अति संकट प्राप्त न हो। जातीय कर्मों द्वारा अवसर आने पर ऋण उतारना ही पड़ता है, क्योंकि जाति के कर्मों में कुछ अंश उसके कर्मोंका भी है॥

इसी प्रकार प्राकृत नियम की परोक्षगतिके कारण उसेबहुत से लाभ भी हो सक्ते हैं, जैसे कि एक ऐसी जाति में जन्म लेने से होते हैं, जोकि अपने श्रेष्ठ कर्मोंके फलों को भोग रही हो। इस प्रकार प्रकृति उस से अपना ऋण चुका लेती है। यह प्राप्ति उसे वर्त्तमान जीवन में कदापि न होती, यदि उसके अपने कर्मोंका संबन्ध जातीय कर्मों के साथ न होता॥

किसी विशेष जाति में मनुष्यका जन्म लेना उसकी अपनी उन्नति की न्यूनाधिकता से तथा परिणाम चक्र (evolution) के सामान्य नियमों से निर्णय होता है। परिणाम चक्र के नियमानुसार साधारण मनुष्य को शनैः २ उन्नति करते हुये एक भूगोल की सात जातियों में से ही गमन करना नहीं पड़ता, किन्तु उन की उपजातियों में से भी भ्रमण करना पड़ता है। इस नियमके अनुसार कई ऐसे बन्धन उत्पन्न होते हैं, कि जिनके अनुकूल होकर प्रत्येक प्राणी के कर्मोंको व्यवहार करना पड़ताहै। जिस उपजाति में जो

मनुष्य गमन कर रहा है, उस ही उपजाति की किसी शाखामें जन्म लेने से उस मनुष्य को अपने कर्मानुसार उन्नति करने के वास्ते योग्य सम्बन्ध मिल सक्ते हैं, अन्यथा नहीं। बहुतसे मनुष्योंके गत जन्मों का क्रम दूर तक देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि बाजे मनुष्य तो नियत क्रम के साथ एक उपजाति से दूसरी उपजाति में उन्नति करते चले जाते हैं, और कई जो भ्रमणशील हैं, एक ही उपजातिमें बारंबार जन्म लेते हैं। उपजाति की किसी एक वा दूसरी शाखा में जन्म लेना मनुष्य के अपने भावों पर निर्भर है। जैसा उस का भाव होगा वैसे ही भाव वाली शाखा की ओर उस के कर्म उसे खेंच कर ले जावेंगे। यही कारण है, कि जैसा इतिहासों के पढ़ने से मालूम होता है, कि प्रत्येक १५०० वर्ष के अनन्तर किसी जाति वा प्रजा में प्रभुताई और अधिकार विशेषता से प्रकट होते हैं। प्राचीन रोमन्ज़ (romans) जो कि बडे शूरवीर तेजस्वी और पराक्रमी थे, अब इङ्गलैण्ड भूमिमें जन्म लेकर अंग्रेज़ कहलाते हैं, इसी ही वास्ते इङ्गलैण्ड की प्रजा में शूरबीरता, तेज, पराक्रम और प्रदेश में जाकर विजय पाने और वहां बसतियें बनाने का उत्साह अधिक मिलता है। उक्त लक्षणोंके संस्कार गत जन्म में जिसके हृदयमें दृढ़ हो चुके थे और जिस के पुनर्जन्मका समय अब आगया है, उसे उसके कर्म इङ्गलिश जाति (ation) की ओर खेंच कर लेजावेंगे। और वहां उसे जातीय दुःख, सुख, हानि, लाभ अपने २ कर्मों के अनुसार भोगना पड़ेगा॥

किसी विशेष कुटुम्ब के साथ सम्बन्ध का होना विशेष करके प्राणी की अपनी व्यक्ति पर निर्भर है। जो मनुष्य एक जन्म में गूढ़स्नेह के तन्तु बुनते हैं, वे अगले जन्म में एक कुटुम्ब में

आते हैं और संग रहते हैं। कभी२ यह तन्तु कई कई जन्मों तक दृढ़ाकार रहते हैं और इसी वास्ते दो मनुष्यों के भाग्य परस्पर संयुक्त होते है। कभी ऐसा भी होता है कि सांसारिक जीवन में मानसिक और अध्यात्मिक शक्तियों की उद्योगिता में भेद होनेके कारण मनुष्यों के स्वर्गीय भोग का समय तुल्य नहीं होता है और इसवास्ते कुटुम्बिन् जुदा जुदा होजाते हैं; और सम्भव है, कि फिर कई जन्मों तक उन का मिलाप न हो। सामान्य नियम तो यह है, कि जीवनके अति उत्तम व्यवहारमें दो मनुष्योंका जितना अधिक गूढ़ सम्बन्ध होगा, उतनी ही अधिक संभावना उन को एक कुटुम्ब में जन्म लेने की होगी। कुटुम्ब के एकत्रित कर्मोंका भाव भी मनुष्य के निज कर्मों पर पड़ता है और इसी कारण कुटुम्ब के साथ कुछ दुःख सुख उसे ऐसा भी भोगना पड़ता है जोकि उसे अन्यथा भोगना न पड़ता। क्योंकि वह उस के प्रारब्ध में नहीं है। इस से विदित होता है, कि मनुष्य को सञ्चित कर्मोंका कुछ अंश अनवसर (बेमौका) भी भोगना पड़ता है॥

कर्म-समूह की गतिका सविस्तर वर्णन न तो छोटी सी पुस्तक में समा ही सकता है, और ना ही लेखक की सामर्थ्य में है। इस स्थान में जिज्ञासुओं को इस विषय पर बिखरे हुए इशारे ही दिये जा सक्ते हैं। सम्यक् ज्ञान के वास्ते एक २ गति वा दशा को सहस्रों वर्ष पर्यंत पीछे तक खोज कर विचार करने की आवश्यकता होती है। ऐसे विषयों पर मानसिक कल्पनायें करनी व्यर्थ होती हैं, शान्ति और धैर्य के साथ एक २ गतिके लक्षणों को दूर तक दृष्टिगोचर करने से ही कुछ लाभ हो सकता है, मनोकल्पना से कुछ नहीं प्राप्त होता॥

परन्तु कर्म-समूह की एक और गति है कि जिस का किञ्चित्मात्र वर्णन करना इस स्थानमें आवश्यक प्रतीत होता है। उस गति के द्वारा मनुष्य के संकल्प तथा उस की क्रियाओं, और वाह्य प्रकृति में परस्पर सम्बन्ध जानाजाता है। इस अस्पष्ट विषय पर योगिनी मेडेम वलेवेटस्की (Mme Blavatsky) यह लिखती हैं "प्लेटो" (Plato) के मतानुसार अरिसटोटल (Aristotle) वर्णन करता है कि भूत शब्द का अभिप्राय उन विदेही सत्ताओं से है, जो कि हमारी सृष्टि के चार वडे विभागों की रक्षा और पालन करती हैं। इस प्रकार मूर्त्ति पूजक लोग इसाईओं से अधिकतर तो महाभूतों और चतुर्दिशाओं की स्तुति और अर्चना नहीं करते हैं। उन की स्तुति और अर्चना उन देवताओं के निमित्त होती हैं जो कि चार दिशाओं की रक्षा करते हैं और जिन को दिक्पाल कहते हैं। पादरी लोग दो प्रकार की विदेही सत्तायें मानते हैं; एक पिशाच रूप और दूसरी देवता रूप। केवालिस्ट और तत्ववेत्ता एक ही प्रकार की सत्तायें मानते हैं। इन्हें उन सत्ताओं में भेद भाव नहीं रहता है। केवल रोमन चर्च वालों का ही यह स्वभाव होता है कि जब किसी सत्ता को उन के दिये हुए नाम से भिन्न किसी अन्य नाम से पुकारा जावे तो वे झट कह देते हैं कि यह सत्ता तो पिशाच रूप है। कभी यह नहीं सोचना चाहिये कि देवता तथा महाराजा ईश्वर की आज्ञानुसार वा उस के विपरीत मनुष्य को दण्ड अथवा फल दे सक्ते हैं; मनुष्य आप ही अपने को दण्ड देता है और आप ही फलदेता है। जैसी करनी वैसी भरनी, उसके अपने कर्म हर एक प्रकार की विपदायें और कष्ट उस की ओर खेंच लेते हैं और इसी प्रकार जाति के समूहित कर्म जातीय विपत्तियों को खेंच लेते हैं।

हम निदान वा कारण उत्पन्न करते हैं, और इन से देवलोक में सम्बन्धित शक्तियें जग उठती हैं, जो कि अपने आकर्षक भावके कारण बेवश होकर उन मनुष्यों की ओर खिंच कर जाती हैं और उन पर अपना प्रभाव डालती हैं, कि जिन्हों ने उन को जगाने वाले कारणों वा निदानों को उत्पन्न किया था, चाहे ऐसे मनुष्यों ने सचमुच कोई दुष्ट क्रिया की हो अथवा मनमें ही उस का केवल दृढ़ विचार किया हो। क्योंकि आधुनिक पदार्थ विद्या के अनुसार भी संकल्प प्राकृतिक हैं। और जेवनस (Jevons) और बैवज (Babbage) साहब अपनी पुस्तक "Principles of science" में लिखते हैं, कि प्रकृति के प्रत्येक अणु में भूतकाल में हुई हुई सर्व घटनाओं के संस्कार अंकित रहते हैं। दिन प्रतिदिन आधुनिक पदार्थविद्या शनैः २ उन सिद्धांतों को सिद्ध करती जाती है, जोकि प्राचीन गुप्तविद्या में थे ॥

संकल्प के प्राकृतिक होने से यह अभिप्राय नहीं है जैसा "मौलहचट" (जरमन देश का प्रकृतिवादी मानता है) कि प्रकृति की गमनागमन गति ही से संकल्प होता है, ऐसा कदापि नहीं है। निस्संदेह कायक और मानसिक अवस्थाएं एक दूसरे से भिन्न २ होती हैं, किन्तु उस से इस बात में कुछ विरोध नहीं पड़ता, कि संकल्प स्थूल-मस्तिष्क में परिणाम करने के इतर गगनमण्डल में ऐसे रूप भी बनाता है, जोकि दृष्टिगोचर होते हैं, यद्यपि साधारण नेत्रों को तो नहीं। ऐसा प्रतीत होता है, कि जब मनुष्य विनाश कारक बहुत से दुष्ट संकल्प-रूप उत्पन्न कर देते हैं और यह एकत्र होकर गगनमंडलमें अपने गण बनालेते हैं, तब उनकी शक्ति अधोमुखी होकर मेघकी न्याईं स्थूल-मंडल में उतर सकती

है, और उतरतीहै, और संग्राम, राज्य परिवर्तन, सामाजिक कोलाहल, और अन्य नानाप्रकारकी हलचल मचाकर अपने पैदा करनेवाले मनुष्यों के समूह पर विजली के समान पड़ती है और विकराल ध्वंस मचाती है। इस प्रकार मनुष्य जाति अपने भाग्य को रचनेवाली आपहीहै, उसकी सृष्टि उसके अपने कर्मोंसे बनतीहै ॥

इस ही नियम के अनुसार महापातक, महामारियां और देशीय विपदाएं आया करती हैं। क्रोध के संकल्प-रूप प्राणों के घात में सहकारी होते हैं, इन रूपों के देवताओं को अपराधों से पुष्टि मिलती है ॥

एक अपराधसे नानाप्रकारके परिणाम उपजते हैं, वध्य हुए२ पुरुषके बांधवों और मित्रों को बाधक पुरुष से घृणा होतीहै। और उसके निमित्त उनके दिलों में हिंसात्मक विचार उठते हैं, हिंसक को बड़ा घोर कोप आताहै और उसकी उन्मत्तता का वेग अनन्त होताहै, जब कि बलात्कार उसको फांसी देकर इस संसार में से निकाल दिया जाता है। इन से नाना प्रकार के दुष्ट और अनिष्ट संकल्प-रूप उत्पन्न हो कर दुष्ट संकल्पजात देवगणों की पुष्टि कर देते हैं। पापी पुरुषोंके हृदयों में यह देवगण गगनमंडल में से फिर नये अपराध की प्रेरणा करते हैं, इस प्रकार पापात्मक वेगों का चक्र बन्ध जाता है, अपराधी क्रियायें देवगणों को बल प्रदान करती हैं। और देवगण उसके बदलेमें नये अपराधों का वेग पापी मनुष्योंके चित्तमें डालते हैं। इस चक्र के कारण दुष्ट कर्मों का बड़ा भारी समूह बन जाताहै। व्याधियें फैल जाती हैं और साथ साथ ही जो भय उनका लोगों में फैलता है, उस से बीमारी का बल कई गुणा बढ़ जाता है। बहुत से आकर्षक क्षोभ

(magnetic disturbance). स्थापन हो कर वृद्धिको प्राप्त होते हैं,और उन मनुष्यों पर अपना भाव डालते हैं, जोकि क्षोभित स्थानों के अन्दर आजाते हैं। नाना प्रकार से मनुष्यों के दुष्ट संकल्प संहार मचाते हैं, क्योंकि मनुष्य अपनी क्रियाशक्तिको सृष्टि की रचना में सहकारी होने के स्थान दुराचारों में लगाता रहता है॥

समाप्ति।

कर्मनीति और उसकीगतिका संक्षिप्तवर्णन अब हम समाप्त करते हैं,कि जिसके ज्ञानसे मनुष्य अपनी उन्नतिको करसकता है और जिसको व्यवहारमें लानेसे मनुष्य बन्धनोंसे अपने आपको मुक्त कर सकता है, और अपनी जातिके मनुष्योंसे पहिले ही पूर्ण ज्ञान को प्राप्त होकर संसार चक्रके रक्षकों और सहायकों में से एक बन सक्ताहै। इस नीति की सत्यताके दृढ़ और स्थिर निश्चय से मनुष्य के जीवन में अचल प्रसन्नता और पूर्ण निर्भयता आ-जाती है। उसका पक्का विश्वास होता है, कि उसको कोई ऐसी क्रिया स्पर्श नहीं कर सक्ती, जो उस से न उपजी हो। कोई हानि उसे प्राप्त नहीं हो सकती, जबतक कि वह स्वयं उस का भागी न हो। जोकुछ बीजा जाताहै अवश्यमेव योग्य समय पर वह फल लाता है, और मनुष्य को उसे भोगना पड़ता है इसी लिये अपने बीजेहुए कर्मोंके दुःखदाई फलोंको भोगते समय शोक करनाव्यर्थ है। कर्म्म भोग तो अटल है, चाहे अब भोगो चाहे भविष्यत् में, इससे बचनहीं सकते,और जब कोई कर्म एकवेर भोग लिया जाता है तो फिर कभी इससे दुःख नहीं होता। इस कारण से दुःखदाई कर्मोंके फल को बड़ी प्रसन्नताके साथ भोग कर उनकी समाप्ति की जाती है। ऋण सिर पर चढ़ा अच्छा नहीं होता है, जितना

उतर जावे उतना ही सिरसे बोझ हलका होता है। क्या ही अच्छा होता, यदि संसार इस बात को समझ जाता और इस नीति का आश्रय लेने से जो बल प्राप्त होता है, उसे अनुभव करता। बड़ी दुर्भाग्यता की बातहै, कि पश्चिम देशके लोग तो इसे कल्पित ही समझते हैं। तत्वज्ञानसभा के सभासदों में भी इस सिद्धान्त का निश्चय प्रायः बुद्धि में तो होता है किन्तु इस निश्चय के अनुकूल जीवन का व्यवहार बहुत कम होता है। प्रोफैसर बैन साहिब का कथन है कि किसी निश्चय का बल उस भाव से मापा जाता है जोकि उससे मनुष्य के आचरण पर होता है, कर्म नीति के निश्चय से जीवन शुद्ध, बली और आनन्दमयी हो जाना चाहिये। केवल हमारे ही कर्म हमें रोकते हैं और हमारी ही इच्छायें हमें बांधती हैं। एकबेर भी नीति के पूरा अनुभव होजाने से मुक्ति का द्वार सुलभ हो जाता है। नीति उस प्राणीको कदापि बन्धनमें नहीं रख सकती, जिसने ज्ञान द्वारा बल उपलब्ध कर लियाहै और जो इन दोनों (ज्ञान और बल) को ईश्वरार्पण कार्य्योंमें लगाताहै॥

ॐ तत्सत्॥

॥ इति कर्म्मव्यवस्था समाप्तः॥